हिन्दी

प्रथम आवृत्ति : १०,०००

वीर सं. २५०४ ꕥ वि. सं. २०३४

गुजराती

प्रथम आवृत्ति : प्रतियाँ ३१०० (वि. सं. २०३४)
द्वितीय ,, : ,, ६००० (,, ,, ,,)
तृतीय ,, : ,, १०००० (,, ,, ,,)

कन्नड

प्रथम आवृत्ति : (प्रेसमें)

मराठी

प्रथम आवृत्ति : (प्रेसमें)

: मुद्रक :

मगनलाल जैन

अजित मुद्रणालय

सोनगढ (सौराष्ट्र)

ॐ

नमः श्रीसद्गुरुदेवाय ।

प्रकाशकीय निवेदन

'बहिनश्रीके वचनामृत' नामका यह लघुकाय प्रकाशन प्रशममूर्ति निजशुद्धात्मदृष्टिसम्पन्न पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके अध्यात्मरससभर प्रवचनोंमेंसे उनकी चरणोपजीवी कुछ कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंने अपने लाभ हेतु झेले हुए—लिखे हुए—वचनामृतमेंसे चुने हुए बोलोंका संग्रह है ।

परमवीतराग सर्वज्ञदेव चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीर-स्वामीकी दिव्यध्वनि द्वारा पुनः प्रवाहित हुए अनादिनिधन अध्यात्म-प्रवाहको श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवने गुरुपरम्परासे आत्मसात् करके युक्ति, आगम और स्वानुभवमय निज वैभव द्वारा सूत्रबद्ध किया; और इस प्रकार समयसारादि परमागमोंकी रचना द्वारा उन्होंने जिनेन्द्रप्ररूपित विशुद्ध अध्यात्मतत्त्व प्रकाशित करके वीतराग मार्गका परम-उद्योत किया है । उनके शासनस्तम्भोपम परमागमोंकी विमल विभा द्वारा निजशुद्धात्मानुभूतिमय जिनशासनकी मंगल उपासना करके हमारे सौभाग्यसे साधक संत आज भी उस पुनीत मार्गको प्रकाशित कर रहे हैं ।

परमोपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीको वि. सं. १९७८ में भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत समयसार-परमागमका पावन योग हुआ । इससे उनके सुप्त आध्यात्मिक पूर्वसंस्कार जागृत हुए, अंतःचेतना विशुद्ध आत्मतत्त्व साधनेकी ओर मुड़ी—परिणति

रहती थी। उस शुभ भावनाको साकार करनेमें, कुछ ब्रह्मचारिणी वहिनोंने पूज्य वहिनश्री चंपाबेनकी प्रवचनधारामेंसे अपनेको विशेष लाभकारी हों ऐसे जो वचनामृत लिख लिये थे वे उपयोगी हुए हैं। उन्हींमेंसे यह अमूल्य वचनामृतसंग्रह तैयार हुआ है। जिनके लेख यहाँ उपयोगी हुए हैं वे वहिनें अभिनन्दनीय हैं।

पूज्य वहिनश्रीके श्रीमुखसे प्रवाहित प्रवचनधारामेंसे झेले गये अमृतबिन्दुओंके इस लघु संग्रहकी तात्त्विक वस्तु अति उच्च कोटिकी है। उसमें आत्मार्थप्रेरक अनेक विषय आ गये हैं। कहीं न रुचे तो आत्मामें रुचि लगा; आत्माको लगन लगे तो जरूर मार्ग हाथ आये; ज्ञानीकी सहज परिणति; अशरण संसारमें वीतराग देव-गुरु-धर्मका ही शरण; स्वभावप्राप्तिके लिये यथार्थ भूमिकाका स्वरूप; मोक्षमार्गमें प्रारम्भसे लेकर पूर्णता तक पुरुषार्थकी ही महत्ता; द्रव्य-दृष्टि और स्वानुभूतिका स्वरूप तथा उसकी चमत्कारिक महिमा; गुरुभक्तिकी तथा गुरुदेवकी भवान्तकारिणी वाणीकी अद्‌भुत महिमा; मुनिदशाका अंतरंग स्वरूप तथा उसकी महिमा; निर्विकल्पदशा—ध्यानका स्वरूप; केवलज्ञानकी महिमा; शुद्धाशुद्ध समस्त पर्याय विरहित सामान्य द्रव्यस्वभाव वह दृष्टिका विषय; ज्ञानीको भक्ति-शास्त्रस्वाध्याय आदि प्रसंगोंमें ज्ञातृत्वधारा तो अखण्डितरूपसे अंदर अलग ही कार्य करती रहती है; अखण्ड परसे दृष्टि छूट जाये तो साधकपना ही न रहे; शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्वके आश्रयरूप स्ववशपनेसे शाश्वत सुख प्रगट होता है;—इत्यादि विविध अनेक विषयोंका सादी तथापि प्रभावशाली सचोट भाषामें सुन्दर निरूपण हुआ है।

इस 'वहिनश्रीके वचनामृत' नामक पुस्तककी गुजराती प्रथम आवृत्ति (प्रतियाँ ३१००) पू. वहिनश्रीकी ६४वीं जन्मजयंती (गुजराती द्वितीय श्रावण कृष्णा दूज, वि. सं. २०३३)के मंगल दिवस पर ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित की गई थी। वह प्रथमावृत्ति एक माह जितने अति अल्प समयमें समाप्त हो जानेसे तथा पाठक मुमुक्षुओं द्वारा

जोरदार मांग होनेसे इसकी द्वितीयावृत्ति (६००० प्रतियां) शीघ्र मुद्रण करवाकर प्रकाशित की गई थी। इस समय गुजरातीमें तृतीयावृत्ति (१०००० प्रतियां)का मुद्रण कार्य चल रहा है।

इस पुस्तकका गुजराती संस्करण पढ़कर हिन्दीभाषी अनेक मुमुक्षुओंने ऐसी भावना प्रगट की कि—पूज्य बहिनश्रीके मुखारविंदसे निकले हुए इस स्वानुभवरसयुक्त अध्यात्मपीयूषका—इस वचनामृत-संग्रहका—हिन्दी भाषान्तर कराकर प्रकाशन किया जाय तो हिन्दी-भाषी अध्यात्मतत्त्वपिपासु जनता इससे बहुत लाभान्वित हो। उस मांगके फलस्वरूप यह हिन्दी संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता होती है। अजित मुद्रणालयके संचालक एवं 'आत्मधर्म'के भूतपूर्व अनुवादक श्री मगनलालजी जैनने इसका सरल एवं रोचक हिन्दी भाषान्तर तथा सुन्दर मुद्रण अति अल्प समयमें कर दिया है जिनके लिये वे धन्यवादके पात्र हैं।

इस पुस्तकका लागत मूल्य करीब छह रुपये होता है, परन्तु अनेक मुमुक्षुओं द्वारा उत्साहपूर्वक दानकी धारा प्रवाहित की गई होनेसे इसका मूल्य कम करके तीन रुपया रखा गया है।

अंतमें, हमें आशा है कि अध्यात्मरसिक जीव पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूतिरसधारामेंसे प्रवाहित इस आत्मस्पर्शी वचनामृत द्वारा आत्मार्थकी प्रबल प्रेरणा पाकर अपने साधनापथको सुधास्यंदी बनायेंगे।

फाल्गुन वदी दसमी

श्री दि. जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमोपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

परमात्मने नमः ।

बहिनश्रीके वचनामृत

[पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके प्रवचनोंसे चुने गये]

हे जीव ! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा ॥ १ ॥

❁

अंतरकी गहराईसे अपना हित साधनेको जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्माकी सच्ची लगन लगे और अंतरमें मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्माकी लगन लगनी चाहिये; उसके पीछे लगना

चाहिये। आत्माको ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये। 'मेरा हित कैसे हो?' 'मैं आत्माको कैसे जानूँ?'—इस प्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे ॥ २ ॥

❀

ज्ञानीकी परिणति सहज होती है। हर एक प्रसंगमें भेदज्ञानको याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परन्तु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है—आत्मामें धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है ॥ ३ ॥

❀

ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरेको प्रोत्साहन देनेवाले हैं। ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है किन्तु रुंधा हुआ कषाय है। परन्तु ज्ञान न होनेसे जीव कषायको पहिचान नहीं पाता। ज्ञान स्वयं मार्गको जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञानको कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सबसे निस्पृह एवं स्वकी मौजमें ज्ञानको टिका रखता है। ज्ञान सहित जीवन नियमसे वैराग्यमय ही होता है ॥ ४ ॥

❀

अहो! इस अशरण संसारमें जन्मके साथ मरण लगा हुआ है। आत्माकी सिद्धि न सधे तब तक जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहेगा। ऐसे अशरण संसारमें देव-गुरु-धर्मका ही शरण है। पूज्य गुरुदेवके बताये हुए चैतन्य-शरणको लक्षगत करके उसके दृढ़ संस्कार आत्मामें जम जायँ—यही जीवनमें करने योग्य है ॥ ५ ॥

❀

स्वभावकी बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाय। 'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीरको चीरता हुआ हृदयमें उतर जाय, रोम-रोम उल्लसित हो जाय—इतना हृदयमें हो, और स्वभावको प्राप्त किये बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े। यथार्थ भूमिकामें ऐसा होता है ॥ ६ ॥

❀

जगतमें जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसेकी जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार आत्मामें पग-पग पर अर्थात् पर्याय-पर्यायमें पुरुषार्थ ही आवश्यक है। पुरुषार्थके बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती। अर्थात् रुचिसे लेकर

ठेठ केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है ॥ ७ ॥

❁

आजकल पूज्य गुरुदेवकी बात ग्रहण करनेके लिये अनेक जीव तैयार हो गये हैं। गुरुदेवकी वाणीका योग प्रबल है; श्रुतकी धारा ऐसी है कि लोगोंको प्रभावित करती है और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। गुरुदेवने मुक्तिका मार्ग दरशाया और स्पष्ट किया है। उन्हें श्रुतकी लब्धि है ॥ ८ ॥

❁

पुरुषार्थ करनेकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन टल जाय। फिर युक्तिसे कमाये। पैसा पैसेको खींचता है—धन कमायें तो ढेर हो जायें, तदनुसार आत्मामें पुरुषार्थ करनेकी युक्ति आ गई, तो कभी तो अंतरमें ढेरके ढेर लग जाते हैं और कभी सहज जैसा ही बना रहता है ॥ ९ ॥

❁

[illegible] निवृत्तस्वरूप है, [illegible] तो सबको [illegible] ही [illegible] ज्ञाता-दृष्टापने [illegible]

ही नहीं। वे अपनेको भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य—आत्मा प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है ॥१०॥

❀

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियोंको अपवादमार्गका या उत्सर्ग-मार्गका आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाममें आगे बढ़ा जा सके उस मार्गको ग्रहण करते हैं। किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवादकी हठ करे तो उसे वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी ही खबर नहीं है ॥११॥

❀

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्यके तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तलमें ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूतिके कालमें या बाहर उपयोग हो तब भी तल परसे दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्यके पातालमें पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफामें, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधनाकी सहज दशा साधी हुई है ॥१२॥

❀

'मैं ज्ञायक और यह पर', बाकी सब जाननेके प्रकार हैं। 'मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर'—ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो उसमें सब आ जाता है, परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं, करनेकी ठानता ही नहीं, इसलिये कठिन लगता है ॥ १३ ॥

❀

'मैं हूँ' इस प्रकार स्वयंसे अपने अस्तित्वका जोर आता है, स्वयं अपनेको पहिचानता है। पहले ऊपर-ऊपरसे अस्तित्वका जोर आता है, फिर अस्तित्वका गहराईसे जोर आता है; वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होनेसे सहजरूपसे जोर आता है। भावनाकी उग्रता हो तो सच्चा आनेका अवकाश है ॥ १४ ॥

❀

तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनि जो कि जड़ है उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणीकी मिठास देखकर द्राक्ष शरमाकर वनवासमें चली गई और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणीकी महिमा

गायी है; फिर जिनेन्द्रदेवके चैतन्यकी महिमाका तो क्या कहना! ॥ १५ ॥

❀

ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतरमें सींचनेसे अमृत मिलेगा, तेरे सुखका फव्वारा छूटेगा; राग सींचनेसे दुःख मिलेगा। इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जलका सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर ॥ १६ ॥

❀

जैसे वृक्षका मूल पकड़नेसे सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़नेसे सब हाथ आयगा। शुभ-परिणाम करनेसे कुछ हाथ नहीं आयगा। यदि मूल स्वभावको पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शान्ति—समाधान रहेगा, ज्ञाता-द्रष्टारूपसे रहा जा सकेगा ॥ १७ ॥

❀

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाशमें उड़ती है, परन्तु डोर हाथमें होती है, उसी प्रकार चैतन्य

हूँ' यह डोर हाथमें रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे दृढ़ता होती है ॥ १८ ॥

❀

ज्ञानीके अभिप्रायमें राग है वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्तिके कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्रायमें काला साँप लगता है। ज्ञानी विभावके बीच खड़े होने पर भी विभावसे पृथक् हैं—न्यारे हैं ॥ १९ ॥

❀

मुझे कुछ नहीं चाहिये, किसी परपदार्थकी लालसा नहीं है, आत्मा ही चाहिये—ऐसी तीव्र उत्सुकता जिसे हो उसे मार्ग मिलता है। अंतरमें चैतन्यऋद्धि है तत्संबंधी विकल्पमें भी वह नहीं रुकता। ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे अपना अस्तित्व ही चाहिये।—ऐसी अंतरमें [illegible] तीव्र उत्सुकता जागे तो आत्मा प्रगट हो. जाता है ॥ २० ॥

चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेषमेंसे नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगतको—चौदह ब्रह्माण्डको शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्यका नाश हो जाय। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्यके परिणामके साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थंकरोंकी कही हुई बात है ॥२१॥

❀

गुरुदेवको मानों तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। वाणीका प्रभाव ऐसा है कि हजारों जीव समझ जाते हैं। तीर्थंकरकी वाणी जैसा योग है। वाणी जोरदार है। चाहे जितनी बार सुनने पर भी अरुचि नहीं आती। स्वयं इतनी सरलतासे बोलते हैं कि जिससे सुननेवालेका रस भी जमा रहता है, रसभरपूर वाणी है ॥२२॥

❀

ऊपर-ऊपरके चिन्तन-विचार आदिसे कुछ नहीं होता. अंदरसे भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। अंतरतलमेंसे

ऐसे कालमें परम पूज्य गुरुदेवश्रीने आत्मा प्राप्त किया इसलिये परम पूज्य गुरुदेव एक 'अचंभा' हैं। इस काल दुष्करमें दुष्कर प्राप्त किया; स्वयं अंतरसे मार्ग प्राप्त किया और दूसरोंको मार्ग बतलाया। उनकी महिमा आज तो गायी जा रही है परन्तु हजारों वर्ष तक भी गायी जायगी ॥ २७ ॥

❀

भविष्यका चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथकी बात है। इसलिये कहा है कि—'बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत!' ॥ २८ ॥

❀

ज्ञानको धीर-गंभीर करके सूक्ष्मतासे भीतर देख तो आत्मा पकड़में आ सकता है। एक बार विकल्पका जाल तोड़कर भीतरसे अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं ॥ २९ ॥

❀

जब बीज बोते हैं तब प्रगट रूपमें कुछ नहीं दिखता, परन्तु विश्वास है कि 'इन बीजोंसे कुछ

मुमुक्षुको प्रथम भूमिकामें थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय। उसे सुखका वेदन चाहिये है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिये उलझन होती है, परन्तु उलझनमेंसे वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। मार्गमें हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, परन्तु [illegible]जीसे प्राप्त नहीं होता ॥ २४ ॥

अंतरंग रुचिको नहीं पलटता, उसे मार्गका ख्याल नहीं है। प्रथम रुचिको पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा। मार्गकी यथार्थ विधिका यह क्रम है ॥ ३६ ॥

'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शांति नहीं मिलती, विकल्पमात्रमें दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभावमें लीन होने पर, आत्मार्थी जीवको सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्दका वेदन होता है ॥ ३७ ॥

आत्माको प्राप्त करनेका जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है उसे प्रतिकूल संयोगोंमें भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु सद्गुरुके गंभीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझमें आये ऐसे रहस्योंसे भरपूर वाक्योंका खूब गहरा मंथन करके मूल मार्गको ढूँढ़ निकालता है ॥ ३८ ॥

सहज दशाको विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहज

दशा ही नहीं है। तथा प्रगट हुई दशाको बनाये रखनेका कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़नेका पुरुषार्थ करता है जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है ॥३९॥

❁

साधक दशामें शुभ भाव बीचमें आते हैं, परन्तु साधक उन्हें छोड़ता जाता है; साध्यका लक्ष नहीं चूकता।—जैसे मुसाफिर एक नगरसे दूसरे नगर जाता है तब बीचमें अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; जहाँ जाना है वहींका लक्ष रहता है ॥ ४० ॥

❁

सच्ची उत्कंठा हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता। जितना कारण दे उतना कार्य होता ही है। अन्दर वेदन सहित भावना हो तो मार्ग ढूँढे ॥ ४१ ॥

❁

यथार्थ रुचि सहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशम-रससे सराबोर होते हैं; और यथार्थ रुचि बिना, वहके

वही शुभभाव रूखे एवं चंचलतायुक्त होते हैं ॥ ४२ ॥

❀

जिस प्रकार कोई बालक अपनी मातासे बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरा गाँव कौन?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरे माता-पिता कौन हैं?' तो कहता है 'मेरी माँ', उसी प्रकार जिसे आत्माकी सच्ची रुचिसे ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है उसे हरएक प्रसंगमें 'ज्ञायकस्वभाव....ज्ञायकस्वभाव'—ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसीकी निरंतर भक्ति एवं भावना रहती है ॥ ४३ ॥

❀

भक्तिमें सद्गुरु अपनेको आवश्यकता लगे तो वस्तुकी प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिंतन, मंथन, खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसीको 'माँ'का प्रेम हो तो उसे माँकी याद, उसका खटका निरंतर बना ही रहता है, उसी प्रकार जिसे आत्माका प्रेम हो वह कहीं भी जाये, सभी कामोंमें उत्साह-पूर्वक भाग लेता हो तथापि अंतरमें खटका तो आत्माका ही रहता है। 'माँ' के विचार करे ही [illegible]

परिवारके समूहमें बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ' में ही लगा रहता है: 'अरे! मेरी माँ.... मेरी माँ!'; उसी प्रकार आत्माका खटका रहना चाहिये। चाहे जिस प्रसंगमें 'मेरा आत्मा....मेरा आत्मा!' यही खटका और रुचि रहना चाहिये। ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती ॥ ४४ ॥

❀

अंतरका तल खोजकर आत्माको पहिचान। शुभ परिणाम, धारणा आदिका थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़नेके बदले अटक जाता है। अज्ञानीको जरा कुछ आ जाय, धारणासे याद रह जाय, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तुके अगाध स्वरूपका उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिये वह बुद्धिके विकास आदिमें संतुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानीको पूर्णताका लक्ष होनेसे वह अंशमें नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था सो प्रगट हुआ इसमें नया क्या है? इसलिये ज्ञानीको अभिमान नहीं होता ॥ ४५ ॥

❀

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये। भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परन्तु प्रतीतिमें ऐसा ही होता है कि यह कार्य करनेसे ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है ॥४६॥

❀

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनयसे है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लारमें बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घरमें रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्योंमें, उपाधियोंमें, जंजालमें फँसा है परन्तु मनुष्यरूपसे छूटा है; वैसे ही जीव विभावके जालमें बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान-आनन्दकी मूर्ति—ज्ञायकमूर्ति है, परन्तु स्वयं अपनेको भूल गया है। विभावका जाल बिछा है उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है ॥४७॥

❀

विकल्पमें झूला-झूला छूट जाना चाहिये। विकल्पमें

किंचित् भी शान्ति एवं सुख नहीं है ऐसा जीवको अंदरसे लगना चाहिये । एक विकल्पमें दुःख लगता है और दूसरे मंद विकल्पमें शांतिका आभास होता है, परन्तु विकल्पमात्रमें तीव्र दुःख लगे तो अंदर मार्ग मिले बिना न रहे ॥ ४८ ॥

❁

सारे दिनमें आत्मार्थको पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर पुरुषार्थकी ओर झुकना । चिंतवन मुख्यरूपसे करना चाहिये । कषायके वेगमें बहनेसे अटकना, गुणग्राही बनना ॥ ४९ ॥

❁

तू सत्‌की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मामें परिणमित हो जायगी । सत्‌के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्तमें अन्य गतिमें भी सत् प्रगट होगा । इसलिये सत्‌के गहरे संस्कार डाल ॥ ५० ॥

❁

आकाश-पाताल भले एक हो जायें परन्तु भाई !

तू अपने ध्येयको मत चूकना, अपने प्रयत्नको मत छोड़ना। आत्मार्थको पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी ॥५१॥

शरीर शरीरका कार्य करता है, आत्मा आत्माका कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं, उनमें 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। देहके लिये अनंत भव व्यतीत हुए; अब, संत कहते हैं कि अपने आत्माके लिये यह जीवन अर्पण कर ॥५२॥

निवृत्तिमय जीवनमें प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। शरीरका रोग मिटना हो तो मिटे, परन्तु इसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। आत्माका कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं ॥५३॥

[illegible]

पूर्वक, अपनी परिणतिमें रस आये ऐसे विचार-मंथन करने पर अंतरसे अपना मार्ग मिल जाता है ॥ ५७ ॥

❀

ज्ञानीको दृष्टि-अपेक्षासे चैतन्य एवं रागकी अत्यन्त भिन्नता भासती है, यद्यपि वे ज्ञानमें जानते हैं कि राग चैतन्यकी पर्यायमें होता है ॥ ५८ ॥

❀

जिस जीवका ज्ञान अपने स्थूल परिणामोंको पकड़नेमें काम न करे वह जीव अपने सूक्ष्म परिणामोंको कहाँसे पकड़ेगा? और सूक्ष्म परिणामोंको न पकड़े तो स्वभाव कैसे पकड़में आयेगा? ज्ञानको सूक्ष्म-तीक्ष्ण करके स्वभावको पकड़े तो भेदविज्ञान हो ॥ ५९ ॥

❀

अनादिकालसे अज्ञानी जीव संसारमें भटकते-भटकते, सुखकी लालसामें विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनंत दुःखोंको सहता रहा है। कभी उसे सच्चा सुख बतलाने-वाले मिले तो शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवालेकी उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप

प्राप्त करनेसे वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़ेसे पुरुषार्थसे फिर वहाँसे अटका और गिरा। —इस प्रकार जीव आत्मा स्वरूप प्राप्त करनेमें अनंत बार अटका। पुण्योदयसे यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुषका योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भवमें करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे ॥६०॥

❀

जिसे सचमुच ताप लगा हो, जो संसारसे ऊब गया हो उसकी यह बात है। विभावसे ऊब जाये और संसारका त्रास लगे तो मार्ग मिले बिना नहीं रहता। कारण दे तो कार्य प्रगट होता ही है। जिसे जिसकी रुचि—रस हो वहाँ उसका समय कट जाता है; 'रुचि अनुयायी वीर्य'। निरंतर ज्ञायकके मंथनमें रहे, दिन-रात उसके पीछे पड़े, तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे ॥६१॥

❀

जीव ज्ञायकके लक्षसे श्रवण करे, चिंतवन करे,

मंथन करे उसे—भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो तथापि—सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषयमें न टिके तो अन्यमें बदले, उपयोग सूक्ष्मसे सूक्ष्म करे, उपयोगमें सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

❀

जैसा बीज बोये वैसा वृक्ष होता है; आमका बीज (गुठली) बोये तो आमका वृक्ष होगा और अकौआ (आक)का बीज बोयेगा तो अकौएका वृक्ष उगेगा। जैसा कारण देंगे वैसा कार्य होता है। सच्चा पुरुषार्थ करें तो सच्चा फल मिलता ही है॥ ६३॥

❀

जगतमें, चैतन्यतत्त्व नमस्कार करने योग्य है; वही मंगल है, वही सर्व पदार्थोंमें उत्तम है, भव्य जीवोंको वह आश्रयरूप ही एक शरण है। बाहरमें, पंच परमेष्ठी —अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु— नमस्कार करने योग्य हैं क्योंकि उन्होंने [illegible]

की है; वे मंगलरूप हैं, वे लोकमें उत्तम हैं; वे भव्य-जीवोंके शरण हैं ॥ ६४ ॥

❀

देव-गुरुकी वाणी और देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा चैतन्यदेवकी महिमा जागृत करनेमें, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करनेमें तथा स्वरूपप्राप्ति करनेमें निमित्त हैं ॥ ६५ ॥

❀

बाह्यमें सब कुछ हो उसमें—भक्ति-उल्लासके कार्य हों उनमें भी—आत्माका आनन्द नहीं है। जो तलमेंसे आये वही आनन्द सच्चा है ॥ ६६ ॥

❀

प्रत्येक प्रसंगमें शान्ति, शान्ति और शान्ति ही लाभदायक है ॥ ६७ ॥

❀

पूज्य गुरुदेवकी वाणी मिले वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतलानेवाले गुरु मिले और उनकी वाणी सुननेको मिली वह मुमुक्षुओंका परम सौभाग्य है।

ख्यन लेकर भविष्यके विभावसे भी निवृत्त होओ। तो जिनके हाथमें आ गई है ऐसे मुनियोंको ानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है ॥ ७३ ॥

❀

यदि तेरी गति विभावमें जाती है तो उसे तासे चैतन्यमें लगा। स्वभावमें आनेसे सुख और की वृद्धि होगी; विभावमें जानेसे दुःख और गुणोंकी होगी। इसलिये शीघ्रतासे स्वरूपमें गति कर ॥ ७४ ॥

❀

जिन्होंने चैतन्यधामको पहिचान लिया है वे स्वरूपमें समा गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। अपने साम्राज्यमें सुखसे रहनेवाले चक्रवर्ती राजाको र निकलना सुहाता ही नहीं, वैसे ही जो चैतन्य-लोकमें विराज गये हैं उन्हें बाहर आना कठिन लगता [illegible] लगता है; आँखसे रेत उठाने जैसा दुष्कर ता है। जो स्वरूपमें ही आसक्त हुआ उसे बाहरकी रुचि छूट गई है ॥ ७५ ॥

❀

[illegible] जाते हैं [illegible] चैतन्यके साथ [illegible]

नवीनताएँ प्रगट होती हैं ॥ ७० ॥

❁

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी। मुनिको अंतरमें चैतन्यके अनंत गुण-पर्यायोंका परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्यमें श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारण-भूतपनेसे देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंधरहित सहज दशा होती है; शिष्योंको बोध देनेका अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूपमें लीनता वृद्धिंगत होती है ॥ ७१ ॥

❁

अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थितिमें झूले वह मुनिदशा। मुनिराज स्वरूपमें निरंतर जागृत हैं। मुनिराज जहाँ जागते हैं वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं। 'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ति करें' ॥ ७२ ॥

❁

द्रव्य तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़तासे

अवलम्बन लेकर भविष्यके विभावसे भी निवृत्त होओ। मुक्ति तो जिनके हाथमें आ गई है ऐसे मुनियोंको भेदज्ञानकी तीक्ष्णतासे प्रत्याख्यान होता है ॥ ७३ ॥

❀

यदि तेरी गति विभावमें जाती है तो उसे शीघ्रतासे चैतन्यमें लगा। स्वभावमें आनेसे सुख और गुणोंकी वृद्धि होगी; विभावमें जानेसे दुःख और गुणोंकी हानि होगी। इसलिये शीघ्रतासे स्वरूपमें गति कर ॥ ७४ ॥

❀

जिन्होंने चैतन्यधामको पहिचान लिया है वे स्वरूपमें ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। जैसे अपने महलमें सुखसे रहनेवाले चक्रवर्ती राजाको बाहर निकलना सुहाता ही नहीं, वैसे ही जो चैतन्य-महलमें विराज गये हैं उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, बोझरूप लगता है; जलके भी उठाने जैसा दुष्कर लगता है। जो स्वरूपमें ही आसक्त हुए उनकी बाहरकी आसक्ति छूट गई है ॥ ७५ ॥

❀

[illegible]

नवीनताएँ प्रगट होती हैं ॥ ७० ॥

❀

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञानकी तलहटी। मुनिको अंतरमें चैतन्यके अनंत गुण-पर्यायोंका परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्यमें श्रामण्यपर्यायके सहकारी कारण-भूतपनेसे देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंधरहित सहज दशा होती है; शिष्योंको बोध देनेका अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूपमें लीनता वृद्धिंगत होती है ॥ ७१ ॥

❀

अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थितिमें झूले वह मुनिदशा। मुनिराज स्वरूपमें निरंतर जागृत हैं। मुनिराज जहाँ जागते हैं वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं। 'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ति करें' ॥ ७२ ॥

❀

द्रव्य तो निवृत्त ही है। उसका दृढ़तारे

हैं तदनुसार स्वयमेव कागज पर चित्रित हो जाते हैं, कोई चित्रण करने नहीं जाता। उसी प्रकार कर्मके उदयरूप चित्रकारी सामने आये तब समझना कि मैंने जैसे भाव किये थे वैसा ही यह चित्रण हुआ है। यद्यपि आत्मा कर्ममें प्रवेश करके कुछ करता नहीं है, तथापि भावके अनुरूप ही चित्रण स्वयं हो जाता है। अब दर्शनरूप, ज्ञानरूप, चारित्ररूप परिणमन कर तो संवर-निर्जरा होगी। आत्माका मूल स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, उसका अवलम्बन करने पर द्रव्यमें जो (शक्तिरूपसे) विद्यमान हैं वह (व्यक्तिरूपसे) प्रगट होगा ॥ ७६ ॥

❀

अनंत कालसे जीवको स्वसे एकत्व और परसे विभक्तपनेकी बात रुची ही नहीं। जीव बाहरसे भूसी कूटता रहता है परन्तु अंदरका जो कस—आत्मा—है उसे नहीं खोजता। राग-द्वेषकी भूसी कूटनेसे क्या लाभ है? उसमेंसे दाना नहीं निकलेगा। परसे एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्वको—अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष एवं असंयुक्त आत्माको—जाने, तो कार्य हो ॥ ७७ ॥

❀

स्वरूपकी लीला जात्यंतर है। मुनिराज चैतन्यके बागमें क्रीड़ा करते-करते कर्मके फलका नाश करते हैं। बाह्यमें आसक्ति थी उसे तोड़कर स्वरूपमें मंथर—स्वरूपमें लीन—हो गये हैं। स्वरूप ही उनका आसन, स्वरूप ही निद्रा, स्वरूप ही आहार है; वे स्वरूपमें ही लीला, स्वरूपमें ही विचरण करते हैं। सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके वे लीलामात्रमें श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं ॥ ७८ ॥

शुद्धस्वरूप आत्मामें मानों विकार अंदर प्रविष्ट हो गये हों ऐसा दिखायी देता है, परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पणमें प्रतिबिम्बरूप हैं। ज्ञान-वैराग्यकी अचिन्त्य शक्तिसे पुरुषार्थकी धारा प्रगट कर। यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके ऊपर आजा। चैतन्यद्रव्य निर्मल है। अनेक प्रकारके कर्मके उदय, सत्ता, अनुभाग तथा कर्मनिमित्तक विकल्प आदि तुझसे अत्यंत भिन्न हैं ॥ ७९ ॥

[illegible]

स्वच्छ ही है। निर्मलताके भंडारको पहिचान तो एकके बाद एक निर्मलताकी पर्यायोंका समूह प्रगट होगा। अंतरमें ज्ञान और आनन्दादिकी निर्मलता ही भरी है ॥८२॥

❀

अंतरमें आत्मा मंगलस्वरूप है। आत्माका आश्रय करनेसे मंगलस्वरूप पर्यायें प्रगट होंगी। आत्मा ही मंगल, उत्तम और नमस्कार करने योग्य है—इस प्रकार यथार्थ प्रतीति कर और उसीका ध्यान कर तो मंगलता एवं उत्तमता प्रगट होगी ॥८३॥

❀

'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ' ऐसी निष्क्रिय दशामें ही शान्ति है। स्वयं अपनेको जाने और परका अकर्ता हो तो मोक्षमार्गकी धारा प्रगटे और साधकदशाका प्रारम्भ हो ॥८४॥

❀

[illegible] [illegible] पर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। [illegible] [illegible] और

बादमें भी देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा, स्वाध्याय आदि साधन होते हैं। बाकी तो, जो जिसमें हो उसमेंसे वह आता है, जो जिसमें न हो वह उसमेंसे नहीं आता। अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे सब प्रगट होता है। देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं देता ॥ ८५ ॥

❀

दर्पणमें जब प्रतिबिम्ब पड़े उसी काल उसकी निर्मलता होती है, वैसे ही विभावपरिणामके समय ही तुझमें निर्मलता भरी है। तेरी दृष्टि चैतन्यकी निर्मलताको न देखकर विभावमें तन्मय हो जाती है, वह तन्मयता छोड़ दे ॥ ८६ ॥

❀

'मुझे परकी चिन्ताका क्या प्रयोजन? मेरा आत्मा सदैव अकेला है' ऐसा ज्ञानी जानते हैं। भूमिकानुसार शुभ भाव आयें परन्तु अंतरमें एकाकीपनेकी प्रतीतिरूप परिणति निरंतर बनी रहती है ॥ ८७ ॥

❀

मैं तो लेप रहित चैतन्यदेव हूँ। चैतन्यको जन्म

नहीं है, मरण नहीं है। चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहलाये। चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें चाहे जैसे उदयमें सदा निर्लेप—अलिप्त ही है। फिर चिन्ता काहे की? मूल तत्त्वमें तो कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता ॥ ८८ ॥

❀

मुनिराजको एकदम स्वरूपरमणता जागृत है। स्वरूप कैसा है? ज्ञान, आनन्दादि गुणोंसे निर्मित है। पर्यायमें समताभाव प्रगट है। शत्रु-मित्रके विकल्प रहित हैं; निर्मानता है; 'देह जाय पर माया होय न रोममें'; सोना हो या तिनका—दोनों समान हैं। चाहे जैसे संयोग हों—अनुकूलतामें आकर्षित नहीं होते, प्रतिकूलतामें खेद नहीं करते। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ें त्यों-त्यों समरसभाव विशेष प्रगट होता जाता है ॥ ८९ ॥

❀

संसारकी अनेक अभिलाषारूप क्षुधासे दुःखित मुसाफिर! तू विषयोंके लिये क्यों तरसता है? वहाँ तेरी भूख शांत नहीं होगी। अंतरमें अमृतमय [illegible]

चैतन्यवृक्ष लगा है उसे देख तो अनेक प्रकारके मधुर फल एवं रस तुझे प्राप्त होंगे, तू तृप्त-तृप्त हो जायगा ॥ ९० ॥

❁

अहा! आत्मा अलौकिक चैतन्यचन्द्र है, जिसका अवलोकन करनेसे मुनियोंको वैराग्य उछल पड़ता है। मुनि शीतल-शीतल चैतन्यचन्द्रको निहारते हुए अघाते ही नहीं, थकते ही नहीं ॥ ९१ ॥

❁

रोगमूर्ति शरीरके रोग पौद्गलिक हैं, आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं। संसाररूपी रोग आत्माकी पर्यायमें है; 'मैं सहज ज्ञायकमूर्ति हूँ' ऐसी चैतन्यभावना, यही मनन, यही मंथन, ऐसी ही स्थिर परिणति करनेसे संसाररोगका नाश होता है ॥ ९२ ॥

❁

ज्ञानीकी दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है, भेदज्ञानकी धारा सतत बहती है ॥ ९३ ॥

❁

ध्रुवतत्त्वमें एकाग्रतासे ही निर्मल पर्याय प्रगट होती है, विभावका अभाव होता है ॥१४॥

❀

मुनि असंगरूपसे आत्माकी साधना करते हैं, स्वरूपगुप्त हो गये हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है ॥१५॥

❀

आत्मा ही एक सार है, अन्य सब निःसार है। सब चिन्ता छोड़कर एक आत्माकी ही चिन्ता कर। कुछ भी करके चैतन्यस्वरूप आत्माको पकड़; तभी तू संसाररूपी मगरके मुँहमेंसे छूट सकेगा ॥१६॥

❀

परपदार्थोंको जाननेसे ज्ञानमें उपाधि नहीं आ जाती। तीन काल, तीन लोकको जाननेसे सर्वज्ञता—ज्ञानकी परिपूर्णता सिद्ध होती है। वीतराग हो जाने पर ज्ञानानन्दस्वभावकी परिपूर्णता प्रगट होती है ॥१७॥

❀

दृष्टि एवं ज्ञान यथार्थ कर। तू अपनेको भूल गया है। यदि बतलानेवाले (गुरु) मिलें तो तुझे उनकी दरकार नहीं है। जीवको रुचि हो तो गुरु-वचनोंका विचार करे, स्वीकार करे और चैतन्यको पहिचाने ॥ ९८ ॥

⊛

यह तो पंखीका मेला जैसा है। इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायँगे। आत्मा एक शाश्वत है, अन्य सब अध्रुव है; बिखर जायगा। मनुष्य-जीवनमें आत्मकल्याण कर लेना योग्य है ॥ ९९ ॥

⊛

'मैं अनादि-अनंत मुक्त हूँ'—इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देनेसे शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। 'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्तिकी पर्यायको आना हो तो आये' इस प्रकार द्रव्यके प्रति आलम्बन और पर्यायके प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है ॥ १०० ॥

⊛

सम्यग्दृष्टिको ऐसा निःशंक गुण होता है कि चौदह ब्रह्माण्ड उलट जायँ तथापि अनुभवमें शंका नहीं होती ॥ १०१ ॥

❀

आत्मा सर्वोत्कृष्ट है, आश्चर्यकारी है। जगतमें उससे ऊँची वस्तु नहीं है। उसे कोई ले जा नहीं सकता। जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है; उसे छोड़ते हुए तुझे डर क्यों लगता है? १०२ ॥

❀

यदि वर्तमानमें ही चैतन्यमें सम्पूर्णरूपसे स्थिर हुआ जा सकता हो तो दूसरा कुछ नहीं चाहिये ऐसी भावना सम्यग्दृष्टिके होती है ॥ १०३ ॥

❀

'मैं शुद्ध हूँ' ऐसा स्वीकार करनेसे पर्यायकी रचना शुद्ध ही होती है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ॥ १०४ ॥

❀

आत्माने तो परमार्थसे त्रिकाल एक ज्ञायकपनेका ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायक तत्त्वको परमार्थसे कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तवमें ज्ञायक पदार्थको नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है ॥१०५॥

❀

[illegible] आत्मा तेरा अपना है इसलिये [illegible] सुगम है। परपदार्थ परका है, अपना [illegible] अपना बनानेमें मात्र आकुलता होती है ॥१०६॥

❀

जगतमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो चैतन्यसे बढ़कर हो। तू इस चैतन्यमें—आत्मामें स्थिर हो, निवास कर। आत्मा दिव्य ज्ञानसे, अनंत गुणोंसे समृद्ध है। अहा! चैतन्यकी ऋद्धि अगाध है। ॥१०८॥

❁

आत्मारूपी परमपवित्र तीर्थ है उसमें स्नान कर। आत्मा पवित्रतासे भरपूर है, उसके अंदर उपयोग लगा। आत्माके गुणोंमें सराबोर हो जा। आत्मतीर्थमें ऐसा स्नान कर कि पर्याय शुद्ध हो जाय और मलिनता दूर हो ॥१०९॥

❁

परम पुरुष तेरे निकट होने पर भी तूने देखा नहीं है। दृष्टि बाहरकी बाहर ही है ॥११०॥

❁

परमात्मा सर्वोत्कृष्ट कहलाता है। तू स्वयं ही परमात्मा है ॥१११॥

❁

प्राप्ति होती है। शुद्धात्माका ध्यान करे उसे शुद्धता प्राप्त हो ॥११८॥

❀

गुरुकी वाणीसे जिसका हृदय बिंध गया है और जिसे आत्माकी लगन लगी है, उसका चित्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता। उसे एक परमात्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं ॥११९॥

❀

पंच परमेष्ठीका ध्यान करता है, परन्तु ठेठ तलमेंसे शान्ति आना चाहिये वह नहीं आती। अनेक फल-फूलोंसे मनोहर वृक्षके समान अनंतगुणनिधि आत्मा अद्भुत है, उसके आश्रयमें रमनेसे सच्ची शान्ति प्रगट होती है ॥१२०॥

❀

आचार्यदेव करुणा करके जीवको जगाते हैं:— जाग रे! भाई, जाग। तुझे निद्रामें दिशा नहीं सूझती। तू अपनी भूलसे ही भटका है। तू स्वतंत्र द्रव्य है; भूल करनेमें भी स्वतंत्र है। तू परिभ्रमणके समय भी

शुद्ध पदार्थ रहा है। यह कोई महिमावान वस्तु तुझे बतला रहे हैं। तू अंदर गहराईमें उतरकर देख, असली तत्त्वको पहिचान। तेरा दुःख टलेगा, तू परम सुखी होगा ॥१२१॥

❀

तू आत्मामें जा तो तेरा भटकना मिट जायगा। जिसे आत्मामें जाना हो वह आत्माका आधार लेता है ॥१२२॥

❀

चैतन्यरूपी आकाशकी रम्यता सदाकाल जयवन्त है। जगतके आकाशमें चन्द्रमा और तारामण्डलकी रम्यता होती है, चैतन्य-आकाशमें अनेक गुणोंकी रम्यता है। वह रम्यता कोई और ही प्रकारकी है। स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करनेसे वह रम्यता ज्ञात होती है। स्वानुभूतिकी रम्यता भी कोई और ही है, अनुपम है ॥१२३॥

❀

शुद्ध आत्माका स्वरूप बतलानेमें गुरुके अनुभव-

पूर्वक निकले हुए वचन रामबाण जैसे हैं, उनसे मोह भाग जाता है और शुद्धात्मतत्त्वका प्रकाश होता है ॥१२४॥

❀

आत्मा न्यारे देशमें निवास करनेवाला है; पुद्गलका या वाणीका देश उसका नहीं है। चैतन्य चैतन्यमें ही निवास करनेवाला है। गुरु उसे ज्ञानलक्षण द्वारा बतलाते हैं। उस लक्षण द्वारा अंतरमें जाकर आत्माको ढूँढ़ ले ॥ १२५ ॥

❀

पर्यायके ऊपरसे दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि लगाये तो मार्ग मिलता ही है। जिसे लगन लगी हो उसे पुरुषार्थ हुए बिना रहता ही नहीं। अंतरसे ऊब जाये, थकान लगे, सचमुचकी थकान लगे, तो पीछे मुड़े बिना न रहे ॥ १२६ ॥

❀

कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता। विभाव भी तेरे नहीं हैं तो बाह्य संयोग तो कहाँसे तेरे होंगे? १२७ ॥

❀

आत्मा तो ज्ञाता है। आत्माकी ज्ञातृत्वधाराको कोई रोक नहीं सकता। भले रोग आये या उपसर्ग आये, आत्मा तो निरोग और निरुपसर्ग है। उपसर्ग आया तो पांडवोंने अंतरमें लीनता की, तीनने तो केवलज्ञान प्रगट किया। अटके तो अपनेसे अटकता है, कोई अटकाता नहीं है ॥१२८॥

❁

भगवानकी आज्ञासे बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायगा। अनेकान्तका ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी ॥१२९॥

❁

निजचैतन्यदेव स्वयं चक्रवर्ती है, उसमेंसे अनंत रत्नोंकी प्राप्ति होगी। अनंत गुणोंकी जो ऋद्धि प्रगट होती है वह अपनेमें है ॥ १३० ॥

❁

शुद्धोपयोगसे बाहर मत आना; शुद्धोपयोग ही संसारसे बचनेका मार्ग है। शुद्धोपयोगमें न रह सके तो प्रतीति तो यथार्थ रखना ही। यदि प्रतीतिमें फेर

'ज्ञायक'—उसीकी रुचि हो तो पुरुषार्थका उत्थान हुए बिना न रहे ॥१३८॥

❁

गहराईसे लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। अनादि कालसे लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो ॥१३९॥

❁

'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्यालमें आती है न? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है न? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपनेको त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमानमें है वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करनेसे आगे बढ़ा जाता है। अनंत कालमें सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत्की श्रद्धा नहीं की ॥१४०॥

❁

अज्ञानी जीवको अनादि कालसे विभावका अभ्यास

है; मुनिको स्वभावका अभ्यास वर्तता है। स्वयंने अपनी सहज दशा प्राप्त की है। उपयोग जरा भी बाहर जाय कि तुरन्त सहजरूपसे अपनी ओर ढल जाता है। बाहर आना पड़े वह बोझ—उपाधि लगती है। मुनियोंको अंतरमें सहज दशा—समाधि है ॥ १४१ ॥

❀

हमेशा आत्माको ऊर्ध्व रखना चाहिये। सच्ची जिज्ञासा हो उसके प्रयास हुए बिना नहीं रहता ॥ १४२ ॥

❀

स्वरूपकी शोधमें तन्मय होने पर, जो अनेक प्रकारके विकल्पजालमें फिरता था वह आत्माके सन्मुख होता है। आत्मस्वरूपका अभ्यास करनेसे गुणोंका विकास होता है ॥ १४३ ॥

❀

सत्य समझनेमें देर भले ही लगे परन्तु फल आनन्द और मुक्ति है। आत्मामें एकाग्र हो वहाँ आनन्द झरता है ॥ १४४ ॥

❀

रागका जीवन हो उसको आत्मामें जाना नहीं बनता; रागको मार दे तो अंतरमें जा सके ॥ १४५ ॥

❀

कोई द्रव्य अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते। आत्मा तो परम शुद्ध तत्त्व है; उसमें क्षायोपशमिकादि भाव नहीं हैं। तू अपने स्वभावको पहिचान। अनंत गुण-रत्नोंकी माला अंतरमें पड़ी है उसे पहिचान। आत्मा-का लक्षण—त्रैकालिक स्वरूप पहिचानकर प्रतीति कर ॥ १४६ ॥

❀

आत्माके ज्ञानमें सब ज्ञान समा जाता है। एकको जाननेसे सब ज्ञात होता है। मूलको जाने बिना सब निष्फल है ॥ १४७ ॥

❀

चैतन्यलोकमें अंदर जा। अलौकिक शोभासे भरपूर अनंत गुण चैतन्यलोकमें हैं; उसमें निर्विकल्प होकर जा, उसकी शोभा निहार ॥ १४८ ॥

❀

रागी हूँ या नहीं—उन सब विकल्पोंके उस पार मैं शुद्ध तत्त्व हूँ। नयोंसे अतिक्रान्त चैतन्य विराजमान है। द्रव्यका अवलम्बन कर तो चैतन्य प्रगट होगा ॥ १४९ ॥

❁

शुद्ध तत्त्वकी दृष्टि प्रगट करके उस नौकामें बैठ गया वह तर गया ॥ १५० ॥

❁

एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्यस्वभावकी गहराईमें उतर जा। कहीं रुकना मत। अंतरसे खटका न जाय तब तक वीतराग दशा प्रगट नहीं होती। बाहुबलीजी जैसोंको भी एक विकल्पमें रुके रहनेसे वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई! आँखमें किरकिरी नहीं समाती, वैसे ही आत्मस्वभावमें एक अणुमात्र भी विभाव नहीं पुसाता। जब तक संज्वलनकषायका अबुद्धिपूर्वकका अतिसूक्ष्म अंश भी विद्यमान हो तब तक पूर्णज्ञान—केवलज्ञान प्रगट नहीं होता ॥ १५१ ॥

❁

होकर व्यर्थ प्रयत्न करता है। जिस प्रकार मरीचिकामेंसे कभी किसीको जल नहीं मिला है उसी प्रकार बाहर सुख है ही नहीं ॥ १५८ ॥

❁

गुरु तेरे गुणोंके विकासकी कला बतलायँगे। गुरु-आज्ञामें रहना वह तो परम सुख है। कर्मजनित विभावमें जीव दब रहा है। गुरुकी आज्ञामें वर्तनेसे कर्म सहज ही दब जाते हैं और गुण प्रगट होते हैं ॥ १५९ ॥

❁

जिस प्रकार कमल कीचड़ और पानीसे पृथक् ही रहता है उसी प्रकार तेरा द्रव्य कर्मके बीच रहते हुए भी कर्मसे भिन्न ही है; वह अतीत कालमें एकमेक नहीं था, वर्तमानमें नहीं है और भविष्यमें नहीं होगा। तेरे द्रव्यका एक भी गुण परमें मिल नहीं जाता। ऐसा तेरा द्रव्य अत्यन्त शुद्ध है उसे तू पहिचान। अपना अस्तित्व पहिचाननेसे परसे पृथक्त्व ज्ञात होता ही है ॥ १६० ॥

❁

संसारसे भयभीत जीवोंको किसी भी प्रकार आत्मार्थका पोषण हो ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। गुरुका आशय समझनेके लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरुकी किसी भी बातमें उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं! वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य ही है, मैं नहीं समझ सकता वह मेरी समझका दोष है ॥ १६१ ॥

❀

द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। जिस प्रकार स्फटिकमें प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीवमें विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है। ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्यायमें निर्लेपता होती है। 'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने—परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है ॥ १६२ ॥

❀

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप, अनंत अनुपम गुणवाला चमत्कारिक पदार्थ है। ज्ञायकके साथ ज्ञान ही नहीं,

पुरुषार्थको अधिक समय लगता है; परन्तु दोनों अल्प-अधिक समयमें भव टलना निःसंदेह है; केवलज्ञान अवश्य प्राप्त होगा ही ॥ १६८ ॥

◆

विभावोंमें और पाँच परावर्तनोंमें कहीं विश्रान्ति नहीं है। चैतन्यगृह ही सच्चा विश्रान्तिगृह है। मुनिवर उसमें बारम्बार निर्विकल्परूपसे प्रवेश करके विशेष विश्राम पाते हैं। बाहर आये नहीं कि अन्दर चले जाते हैं ॥ १६९ ॥

◆

एक चैतन्यको ही ग्रहण कर। सर्व ही विभावोंसे परिमुक्त, अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्वको ही ग्रहण कर, उसीमें लीन हो, एक परमाणुमात्रकी भी आसक्ति छोड़ दे ॥ १७० ॥

◆

एक म्यानमें दो तलवारें नहीं समा सकतीं। चैतन्यकी महिमा और संसारकी महिमा दो एकसाथ नहीं रह सकतीं। कुछ जीव मात्र क्षणिक वैराग्य

करते हैं कि संसार अशरण है, अनित्य है, उन्हें चैतन्यकी समीपता नहीं होती। परन्तु चैतन्यकी महिमा-पूर्वक जिसे विभावोंकी महिमा छूट जाय, चैतन्यकी कोई अपूर्वता लगनेसे संसारकी महिमा छूट जाय, वह चैतन्यके समीप आता है। चैतन्य तो कोई अपूर्व वस्तु है; उसकी पहिचान करनी चाहिये, महिमा करनी चाहिये ॥ १७१ ॥

❀

जैसे कोई राजमहलको पाकर फिर बाहर आये तो खेद होता है, वैसे ही सुखधाम आत्माको प्राप्त करके बाहर आ जाने पर खेद होता है। शांति और आनन्दका स्थान आत्मा ही है, उसमें दुःख एवं मलिनता नहीं है—ऐसी दृष्टि तो ज्ञानीको निरंतर रहती है ॥ १७२ ॥

❀

आँखमें किरकिरी नहीं समाती, उसी प्रकार विभावका अंश हो तब तक स्वभावकी पूर्णता नहीं होती। अल्प संज्वलनकषाय भी है तब तक वीतरागता और केवलज्ञान नहीं होता ॥ १७३ ॥

❀

'मैं हूँ चैतन्य'। जिसे घर नहीं मिला है ऐसे मनुष्यको बाहर खड़े-खड़े बाहरकी वस्तुएँ, धमाल देखने पर अशान्ति रहती है; परन्तु जिसे घर मिल गया है उसे घरमें रहते हुए बाहरकी वस्तुएँ, धमाल देखने पर शान्ति रहती है; उसी प्रकार जिसे चैतन्य-घर मिल गया है, दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसे उपयोग बाहर जाय तब भी शान्ति रहती है ॥ १७४ ॥

❀

साधक जीवको अपने अनेक गुणोंकी पर्यायें निर्मल होती हैं, खिलती हैं। जिस प्रकार नन्दनवनमें अनेक वृक्षोंके विविध प्रकारके पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार साधक आत्माको चैतन्यरूपी नन्दनवनमें अनेक गुणोंकी विविध प्रकारकी पर्यायें खिल उठती हैं ॥ १७५ ॥

❀

मुक्तदशा परमानन्दका मंदिर है। उस मंदिरमें निवास करनेवाले मुक्त आत्माको असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त आनन्द परिणमित होता है। इस मोक्षरूप परमानन्दमन्दिरका

द्वार साम्यभाव है। ज्ञायकभावरूप परिणमित होकर विशेष स्थिरता होनेसे साम्यभाव प्रगट होता है ॥ १७६ ॥

❁

चैतन्यकी स्वानुभूतिरूप खिले हुए नन्दनवनमें साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है। बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता ॥ १७७ ॥

❁

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होना है कि—मैं इन शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ; अंतरमें जो विभाव होता है वह मैं नहीं हूँ; ऊँचेसे ऊँचे जो शुभभाव वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ ॥ १७८ ॥

❁

ध्यान वह साधकका कर्तव्य है। परन्तु वह तुझसे न हो तो श्रद्धा तो बराबर अवश्य करना। तुझमें अगाध शक्ति भरी है; उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है ॥ १७९ ॥

❁

गृहस्थाश्रममें वैराग्य होता है परन्तु मुनिराजका वैराग्य कोई और ही होता है। मुनिराज तो वैराग्य-महलके शिखरके शिखामणि हैं ॥ १८६ ॥

❁

मुनि आत्माके अभ्यासमें परायण हैं। वे बारम्बार आत्मामें जाते हैं। सविकल्प दशामें भी मुनिपनेकी मर्यादा लाँघकर विशेष बाहर नहीं जाते। मर्यादा छोड़कर विशेष बाहर जायँ तो अपनी मुनिदशा ही न रहे ॥ १८७ ॥

❁

जो न हो सके वह कार्य करनेकी बुद्धि करना मूर्खताकी बात है। अनादिसे यह जीव जो नहीं हो सकता उसे करनेकी बुद्धि करता है और जो हो सकता है वह नहीं करता। मुनिराजको परके कर्तृत्वकी बुद्धि तो छूट गई है और आहार-विहारादिके अस्थिरतारूप विकल्प भी बहुत ही मंद होते हैं। उपदेशका प्रसंग आये तो उपदेश देते हैं, परन्तु विकल्पका जाल नहीं चलता ॥ १८८ ॥

❁

अपनी दृष्टिकी डोर चैतन्य पर बाँध दे। पतंग आकाशमें उड़ायें परन्तु डोर हाथमें रहती है, उसी प्रकार दृष्टिकी डोर चैतन्यमें बाँध दे, फिर भले उपयोग बाहर जाता हो। अनादि-अनंत अद्भुत आत्माका—परम पारिणामिक भावरूप अखण्ड एक भावका—अवलम्बन ले। परिपूर्ण आत्माका आश्रय करेगा तो पूर्णता आयगी। गुरुकी वाणी प्रबल निमित्त है परन्तु समझकर आश्रय तो अपनेको ही करना है ॥ १८९ ॥

❁

मैंने अनादिकालसे सब बाहर-बाहरका ग्रहण किया—बाहरका ज्ञान किया, बाहरका ध्यान किया, बाहरका मुनिपना धारण किया, और मान लिया कि मैंने बहुत किया। शुभभाव किये परन्तु दृष्टि पर्याय पर थी। अगाध शक्तिवान जो चैतन्यचक्रवर्ती उसे नहीं पहिचाना, नहीं ग्रहण किया। सामान्यस्वरूपको ग्रहण नहीं किया, विशेषको ग्रहण किया ॥ १९० ॥

❁

[illegible]

करते अंतरमें विशेष लीनता होगी, साधक दशा बढ़ती जायगी। देशव्रत और महाव्रत सामान्य स्वरूपके आलम्बनसे आते हैं; मुख्यता निरंतर सामान्य स्वरूपकी—द्रव्यकी होती है ॥ १९१ ॥

❁

आत्मा तो निवृत्तस्वरूप—शान्तस्वरूप है। मुनिराजको उसमेंसे बाहर आना प्रवृत्तिरूप लगता है। उच्चसे उच्च शुभभाव भी उन्हें बोझरूप लगते हैं—मानों पर्वत उठाना हो। शाश्वत आत्माकी ही उग्र धुन लगी है। आत्माके प्रचुर स्वसंवेदनमेंसे बाहर आना नहीं सुहाता ॥ १९२ ॥

❁

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायकको ज्ञायक द्वारा ही अपनेमें धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीवको तथा मुनिको भेदज्ञानकी परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थको उसकी दशाके अनुसार उपयोग अंतरमें जाता है और

बाहर आता है; मुनिराजको तो उपयोग अति शीघ्रतासे बारम्बार अंतरमें उतर जाता है। भेदज्ञानकी परिणति —ज्ञातृत्वधारा— दोनोंके चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ तबसे कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टिको चौथे गुणस्थानके अनुसार और मुनिको छठवें-सातवें गुणस्थानके अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थके बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है ॥१९३॥

❀

पूज्य गुरुदेवने मोक्षका शाश्वत मार्ग अंतरमें बतलाया है, उस मार्ग पर जा ॥१९४॥

❀

सबको एक ही करना है:—प्रतिक्षण आत्माको ही ऊर्ध्व रखना, आत्माकी ही प्रमुखता रखना। जिज्ञासुकी भूमिकामें भी आत्माको ही अधिक रखनेका अभ्यास करना ॥१९५॥

❀

स्वरूप तो सहज ही है, सुगम ही है; अनभ्यासके कारण दुर्गम लगता है। कोई दूसरेकी संगतमें पड़ गया हो तो उसे वह संग छोड़ना दुष्कर मालूम होता है; वास्तवमें दुष्कर नहीं है, आदतके कारण दुष्कर मानता है। परसंग छोड़कर स्वयं स्वतंत्र-रूपसे अलग रहना उसमें दुष्करता कैसी? वैसे ही अपना स्वभाव प्राप्त करना उसमें दुष्करता कैसी? वह तो सुगम ही होगा न? १९६॥

❀

प्रज्ञाछैनीको शुभाशुभ भाव और ज्ञानकी सूक्ष्म अंतःसंधिमें पटकना। उपयोगको बराबर सूक्ष्म करके उन दोनोंकी संधिमें सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।

अभ्रकके पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभावके बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभावको भिन्न जान ले।

सबमेंसे विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबारमें ही उपयोगको लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही। अनन्त-अनन्त कालसे अनंत जीवोंने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिये तू भी ऐसा कर।

अनन्त-अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न? अटकनेके तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होनेका एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबारमें जाना। स्वयं कहाँ अटकता है उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूपसे अटक जाता है, शुभ भावकी मिठासमें रुक जाता है, 'यह रागकी मंदता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्षका मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार संतुष्ट होकर अटक जाता है; परन्तु यह अंतरमें विकल्पोंके साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है उसे क्यों नहीं देखता? अंतरमें यह शांति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभावको त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर संतुष्ट हो जाता है। सच्चे आत्मार्थीको तथा

सम्यग्दृष्टिको तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है' —इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।

गृहस्थाश्रममें सम्यक्त्वीने मूलको पकड़ लिया है, (दृष्टि-अपेक्षासे) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाएँ-पत्ते जरूर सूख जायँगे। द्रव्यलिंगी साधुने मूलको ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगोंको ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वीको अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनिने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परिषह सहन करे किन्तु अंतरमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलताका वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं ॥ १९९ ॥

●

शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्धनयके विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्माकी अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्डके भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनंत गुणोंका

अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोकका स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्गसे यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्गसे मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णताके लक्षसे प्रारंभ हुआ; इसी मार्गसे देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखनेसे पूरे मालका पता चल जाता है। दूजके चन्द्रकी कला द्वारा पूरे चन्द्रका ख्याल आ जाता है। गुड़की एक डलीमें पूरी गुड़की पारीका पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्तमें) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिये सम्यक्त्वमें चौदह ब्रह्माण्डके भाव आ गये। इसी मार्गसे केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिये शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्माकी अनुभूति वह सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है॥ २००॥

❀

अनादिकालसे निज आत्माका आश्रय लेनेको नहीं

जाता है वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्रमें निश्चयनयके विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।

प्रमाण-अपेक्षासे आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देनेसे परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते। परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्यायस्वभावके कारण होता ही रहता है, सिद्धमें भी परिणति तो होती है।

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर—दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञानकी पर्याय', 'यह मेरी द्रव्यकी पर्याय' इस प्रकार पर्यायमें किसलिये रुकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—तल पर—दृष्टि स्थापित कर न!

परिणाम तो होते ही रहेंगे। परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिये देता है? पर्यायमें—पलटते अंशमें—द्रव्यका परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है? उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्यका अवलम्बन कर न!

ज्ञानानन्दसागरकी तरंगोंको न देखकर उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर। तरंगें तो उछलती ही रहेंगी; तू उनका अवलम्बन किसलिये लेता है ?

अनंत गुणोंके भेद परसे भी दृष्टि हटा ले। अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व—अपरिणामी अभेद एक दल—उसमें दृष्टि दे। पूर्ण नित्य अभेदका जोर ला; तू ज्ञाताद्रष्टा हो जायगा ॥ २०१ ॥

❁

दृढ़ प्रतीति करके, सूक्ष्म उपयोगवाला होकर, द्रव्यमें गहरे उतर जा, द्रव्यके पातालमें जा। वहाँसे तुझे शान्ति एवं आनन्द प्राप्त होगा। खूब धीर-गंभीर होकर द्रव्यके तलका स्पर्श कर ॥ २०२ ॥

❁

यह सर्वत्र—बाहर—स्थूल उपयोग हो रहा है, उसे सब जगहसे उठाकर, अत्यन्त धीर होकर, द्रव्यको पकड़। वर्ण नहीं, गंध नहीं, रस नहीं, द्रव्येन्द्रिय भी नहीं और भावेन्द्रिय भी द्रव्यका स्वरूप नहीं है। यद्यपि भावेन्द्रिय है तो जीवकी ही पर्याय, परन्तु वह

खण्डखण्डरूप है, क्षायोपशमिक ज्ञान है और द्रव्य तो अखण्ड एवं पूर्ण है, इसलिये भावेन्द्रियके लक्षसे भी वह पकड़में नहीं आता। इन सबसे उस पार द्रव्य है। उसे सूक्ष्म उपयोग करके पकड़ ॥ २०३ ॥

❀

आत्मा तो अनंत शक्तियोंका पिण्ड है। आत्मामें दृष्टि स्थापित करने पर अंतरसे ही बहुत विभूति प्रगट होती है। उपयोगको सूक्ष्म करके अंतरमें जानेसे बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं। अंतरमें तो आनन्दका सागर है। ज्ञानसागर, सुख-सागर—यह सब भीतर आत्मामें ही हैं। जैसे सागरमें चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती, उसी प्रकार अनंत-अनंत काल तक केवलज्ञान बहता रहे तब भी द्रव्य तो ज्योंका त्यों ही रहता है ॥ २०४ ॥

❀

चैतन्यकी अगाधता, अपूर्वता और अनंतता बतलानेवाले गुरुके वचनों द्वारा शुद्धात्मदेवको बराबर

ग्रहण कर। उस एकको ही ग्रहण कर। उपयोग बाहर जाये परन्तु चैतन्यका अवलम्बन उसे अंतरमें ही लाता है। बारम्बार....बारम्बार ऐसा करते....करते ....करते (स्वरूपमें लीनता जमते....जमते) क्षपकश्रेणी प्रगट होकर पूर्ण हो जाता है। जो वस्तु है उसी पर अपनी दृष्टिकी डोर बाँध, पर्यायके अवलम्बनसे कुछ नहीं होगा ॥ २०८ ॥

❀

जैसे राजा अपने महलमें दूर-दूर अंतःपुरमें रहता है वैसे ही चैतन्यराजा दूर-दूर चैतन्यके महलमें ही निवास करता है; वहाँ जा ॥ २०९ ॥

❀

तू स्वयं मार्ग जानता नहीं है और जाननेवालेको साथ नहीं रखेगा, तो तू एक डग भी कैसे भरेगा? तू स्वयं तो अंधा है, और यदि गुरुवाणी एवं श्रुतका अवलम्बन नहीं लेगा, तो अंतरमें जो साधकका मार्ग है वह तुझे कैसे सूझेगा? सम्यक्त्व कैसे होगा? सम्यक्चारित्र कैसे आयेगा? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा?

अनंत कालका अनजाना मार्ग गुरुवाणी एवं आगमके बिना ज्ञात नहीं होता। सच्चा निर्णय तो स्वयं ही करना है परन्तु वह गुरुवाणी एवं आगमके अवलम्बनसे होता है। सच्चे निर्णयके बिना—सच्चे ज्ञानके बिना—सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये तू श्रुतके अवलम्बनको, श्रुतके चिंतवनको साथ ही रखना।

श्रवणयोग हो तो तत्कालबोधक गुरुवाणीमें और स्वाध्याययोग हो तो नित्यबोधक ऐसे आगममें प्रवर्तन रखना। इनके अतिरिक्त कालमें भी गुरुवाणी एवं आगम द्वारा बतलाये गये भगवान आत्माके विचार और मंथन रखना ॥२१०॥

❁

वस्तुके स्वरूपको सब पहलुओंसे ज्ञानमें जानकर अभेदज्ञान प्रगट कर। अंतरमें समाये सो समाये; अनन्त-अनन्त काल तक अनन्त-अनन्त समाधिसुखमें लीन हुए। 'रे ज्ञानगुणसे रहित बहुजन पद नहीं यह पा सके'। इसलिये तू उस ज्ञानपदको प्राप्त कर। उस अपूर्व पदकी खबर बिना कल्पित ध्यान

मुमुक्षु जीव शुभमें लगता है, परन्तु अपनी शोधक वृत्ति बह न जाय—अपनी [illegible] शोध चलती रहे इस प्रकार लगता है। शुद्धताका ध्येय छोड़कर शुभका आग्रह नहीं रखता।

तथा वह 'मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ' करके पर्यायकी अशुद्धताको भूल जाय—स्वच्छन्द हो जाय ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदयको भीगा हुआ रखता है ॥ २१५ ॥

❁

जो वास्तवमें संसारसे थक गया है उसीको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वस्तुकी महिमा बराबर ख्यालमें आ जाने पर वह संसारसे इतना अधिक थक जाता है कि 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये' ऐसी दृढ़ता करके बस 'द्रव्य सो ही मैं हूँ' ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है; अन्य सब निकाल देता है।

दृष्टि एक भी भेदको स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि

'मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं'। उसे—द्रव्यदृष्टिवान जीवको—खबर है कि अनंत कालमें अनंत जीवोंने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनंत विभूति प्रगट की है। द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्यमें जो-जो हो वह प्रगट होता ही है; तथापि 'मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्यायमें चिपकती नहीं है। वह तो प्रारम्भसे पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्य पर ही जमी रहती है। किसी भी प्रकारकी आशा बिना बिलकुल निस्पृहभावसे ही दृष्टि प्रगट होती है॥ २१६ ॥

❀

द्रव्यमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटिके नहीं हैं; द्रव्यकी कोटि उच्च ही है, पर्यायकी कोटि निम्न ही है। द्रव्यदृष्टिवानको अंतरमें इतना अधिक रस-कसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्यायमें नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूतिमें —पर्यायमें—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभवमें

आया !' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तंभ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है ॥२१७॥

●

कोई एकान्तमें निवास करनेवाला—एकान्तप्रिय—मनुष्य हो, उसे जबरन् बाह्य कार्यमें लगना पड़े तो वह ऊपरी दृष्टिसे लगता हुआ दिखता अवश्य है, परन्तु कौन जानता है कि वह बाह्यमें आया है या नहीं !! अथवा कोई अति दुर्बल मनुष्य हो और उसके सिर पर कोई कार्यका बोझ रख दे तो उसे कितना कठिन लगता है ? उसी प्रकार ज्ञानीको ज्ञानधारा वर्तनेके कारण बाह्य कार्योंमें लगना बोझरूप लगता है ॥२१८॥

●

चाहे जैसे कठिन समयमें अपने ज्ञान-ध्यानका समय निकाल लेना चाहिये। यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है। इसे व्यर्थ नहीं गँवाना ॥२१९॥

●

ज्ञायकपरिणतिका दृढ़ अभ्यास करो। शुभ भावके

कर्तृत्वमें भी समस्त लोकका कर्तृत्व समाया हुआ है ॥ २२० ॥

❀

सर्वस्वरूपसे उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है। अंतर्मुहूर्तको नहीं किन्तु शाश्वत अंतरमें रह जाना वही निज स्वभाव है, वही कर्तव्य है ॥ २२१ ॥

❀

मुनि बारम्बार आत्माके उपयोगकी आत्मामें ही प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी दशा निराली, परके प्रतिबंधसे रहित, केवल ज्ञायकमें प्रतिबद्ध, मात्र निजगुणोंमें ही रमणशील, निरालम्बी होती है। मुनिराज मोक्षपंथमें प्रयाण आरम्भ किया उसे पूर्ण करते हैं ॥ २२२ ॥

❀

शुद्धात्मामें स्थिर होना वही कार्य है, वही सर्वस्व है। स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है, शुभ भाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है ॥ २२३ ॥

❀

अंतरात्मा तो दिन और रात अंतरंगमें आत्मा,

—यह तो स्वरूपमें झूलते हुए मुनियोंको (आचार्यदेवकी) सीख है। निश्चय-व्यवहारकी संधि ही ऐसी है। इस प्रकार अपनी भूमिकानुसार सबको समझ लेना है ॥२२९॥

⊛

आत्मा तो आश्चर्यकारी चैतन्यमूर्ति! प्रथम उसे चारों ओरसे पहिचानकर, पश्चात् नय-प्रमाणादिके पक्ष छोड़कर अंतरमें स्थिर हो जाना। तब अंतरसे ही मुक्त स्वरूप प्रगट होगा। स्वरूपमें स्थिर हुए ज्ञानी ही साक्षात् अतीन्द्रिय आनन्दामृतका अनुभव करते हैं—'त एव साक्षात् अमृतं पिबन्ति' ॥२३०॥

⊛

आत्माके गुण गाते-गाते गुणी हो गया—भगवान हो गया; असंख्य प्रदेशोंमें अनंत गुणरत्नोंके कमरे सब खुल गये ॥२३१॥

⊛

ज्ञाताका ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो गया, ध्यानमय हो गया—एकाग्रतामय हो गया।

अंदर चैतन्यके नन्दनवनमें उसे सब कुछ मिल गया; अब बाहर क्यों जाये? ग्रहण करने योग्य आत्माको ग्रहण कर लिया, छोड़ने योग्य सब छूट गया; अब किसलिये बाहर जाये? २३२ ॥

❁

अंदरसे ज्ञान एवं आनन्द असाधारणरूपसे पूर्ण प्रगट हुए उसे अब बाहरसे क्या लेना बाकी रहा? निर्विकल्प हुए सो हुए, बाहर आते ही नहीं ॥ २३३ ॥

❁

मुझे अभी बहुत करना बाकी है—ऐसा माननेवालेको ही आगे बढ़नेका अवकाश रहता है। अनंत कालमें 'मुझे आत्माका कल्याण करना है' ऐसे परिणाम जीवने अनेकों बार किये, परन्तु विविध शुभ भाव करके उनमें सर्वस्व मानकर वहाँ संतुष्ट हो गया। कल्याण करनेकी सच्ची विधि नहीं जानी ॥ २३४ ॥

❁

स्वतःसिद्ध वस्तुका स्वभाव वस्तुमें प्रतिकूल क्यों होगा? वस्तुका स्वभाव तो वस्तुके अनुकूल ही होता

शुभका व्यवहार भी असार है, उसमें रुकने जैसा नहीं है। कोई मनुष्य नगरका ध्येय बनाकर चलने लगे तो बीच-बीचमें ग्राम, खेत, वृक्षादि सब आते हैं, परन्तु वह सब छोड़ता जाता है; उसी प्रकार साधकको यह शुभादिका व्यवहार बीचमें आता है परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है। इसलिये वह व्यवहारको छोड़ता हुआ पूर्ण शुद्धात्मस्वरूपमें ही पहुँच जाता है॥ २३९॥

ओ जीव! अनन्त-अनन्त काल बीत गया, तूने परका तो कभी कुछ किया ही नहीं; अंतरमें शुभाशुभ विकल्प करके जन्म-मरण किये हैं। अब अनंत गुणोंका पिण्ड ऐसा जो निज शुद्धात्मा उसे बराबर समझकर, उसीमें तीक्ष्ण दृष्टि करके, प्रयाण कर; उसीका श्रद्धान, उसकी अनुभूति, उसीमें विश्राम कर॥ २४०॥

अहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्दकी मूर्ति! जहाँ देखो वहाँ आनन्द,

आनन्द और आनन्द। जैसे मिश्रीमें सर्वांग मिठास वैसे ही आत्मामें सर्वांग आनन्द ॥ २४१ ॥

❀

चैतन्यदेवकी ओट ले, उसकी शरणमें जा; तेरे सब कर्म टूटकर नष्ट हो जायँगे। चक्रवर्ती मार्गसे निकले तो अपराधी लोग काँप उठते हैं, फिर यह तो तीन लोकका बादशाह—चैतन्यचक्रवर्ती! उसके समक्ष जड़कर्म खड़े ही कैसे रह सकते हैं ॥ २४२ ॥

❀

ज्ञायक आत्मा नित्य एवं अभेद है; दृष्टिके विषयभूत ऐसे उसके स्वरूपमें अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें या गुणभेद कुछ हैं ही नहीं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये यही परमार्थ-आत्मा है। उसीके आश्रयसे धर्म प्रगट होता है ॥ २४३ ॥

❀

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियोंसे भरपूर, अनंत गुणोंकी राशि, अनंत गुणोंका विशाल पर्वत है! चारों ओर गुण ही भरे हैं। अवगुण एक भी नहीं

है। ओहो! यह मैं! ऐसे आत्माके दर्शनके लिये जीवने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया ॥ २४४ ॥

❁

'मैं मुक्त ही हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं तो परिपूर्ण द्रव्यको पकड़कर बैठा हूँ।'—इस प्रकार जहाँ अंतरमें निर्णय करता है, वहाँ अनंत विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है ॥ २४५ ॥

❁

आयुधशालामें चक्ररत्न प्रगट हुआ हो, फिर चक्रवर्ती आरामसे बैठा नहीं रहता, छह खण्डको साधने जाता है; उसी प्रकार यह चैतन्यचक्रवर्ती जागृत हुआ, सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ, अब तो अप्रमत्त भावसे केवलज्ञान ही लेगा ॥ २४६ ॥

❁

आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है। अनंत कालमें न हुआ हो ऐसा, चैतन्यतत्त्वमें जाकर जो दिव्य दर्शन हुआ, वही अलौकिक दर्शन है। सिद्धदशा तककी सर्व लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूतिमें

जाकर मिलती हैं ॥ २४७ ॥

❁

विश्वका अद्भुत तत्त्व तू ही है। उसके अंदर जाने पर तेरे अनंत गुणोंका बगीचा खिल उठेगा। वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर। अनंत कालका विश्राम वहीं है ॥ २४८ ॥

❁

तू अंतरमें गहरे-गहरे उतर जा, तुझे निज परमात्माके दर्शन होंगे। वहाँसे बाहर आना तुझे सुहायगा ही नहीं ॥ २४९ ॥

❁

मुनियोंको अंतरमें पग-पग पर—पुरुषार्थकी पर्याय-पर्यायमें—पवित्रता झरती है ॥ २५० ॥

❁

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्यके लिये दूसरे साधनोंकी राह न देखना पड़े ॥ २५१ ॥

❁

भेदज्ञानके लक्षसे विकल्पात्मक भूमिकामें आगमका चिंतवन मुख्य रखना। विशेष शास्त्रज्ञान मार्गकी चतुर्दिशा सूझनेका कारण बनता है; वह सत्-मार्गको सुगम बनाता है ॥ २५२ ॥

⊛

आत्माको तीन कालकी प्रतीति करनेके लिये ऐसे विकल्प नहीं करना पड़ते कि 'मैं भूतकालमें शुद्ध था, वर्तमानमें शुद्ध हूँ, भविष्यमें शुद्ध रहूँगा'; परन्तु वर्तमान एक समयकी प्रतीतिमें तीनों कालकी प्रतीति समा जाती है—आ जाती है ॥ २५३ ॥

⊛

जिस प्रकार जीवको अपनेमें होनेवाले सुख-दुःखका वेदन होता है वह किसीसे पूछने नहीं जाना पड़ता, उसी प्रकार अपनेको स्वानुभूति होती है वह किसीसे पूछना नहीं पड़ता ॥ २५४ ॥

⊛

अंतरका अपरिचित मार्ग; अंतरमें क्या घटमाल चलती है उसका आगम एवं गुरुकी वाणीसे ही निर्णय

किया जा सकता है। भगवानकी स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्वका प्रकाशन कर सकती है। जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणीका अवलम्बन साथ रखना; तभी तू साधनाके डग भर सकेगा ॥ २५५ ॥

❀

साधकदशाकी साधना ऐसी कर कि जिससे तेरा साध्य पूरा हो। साधकदशा भी अपना मूल स्वभाव तो है नहीं। वह भी प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है, इसलिये वह अपूर्ण दशा भी रखने योग्य तो है ही नहीं ॥ २५६ ॥

❀

शुद्ध द्रव्यस्वभावकी दृष्टि करके तथा अशुद्धताको ख्यालमें रखकर तू पुरुषार्थ करना, तो मोक्ष प्राप्त होगा ॥ २५७ ॥

❀

तू विचार कर, तेरे लिये दुनियामें एक आत्माके सिवा और कौन आश्चर्यकारी वस्तु है?—कोई नहीं। जगतमें तूने सब प्रकारके प्रयास किये, सब देखा,

सब किया, परन्तु एक ज्ञानस्वरूप, सुखस्वरूप, अनंत-गुणमय ऐसे आत्माको कभी पहिचाना नहीं, उसे पहिचान। बस, वही एक करना बाकी रह जाता है ॥ २५८ ॥

❀

किसी प्रकारकी प्रवृत्तिमें खड़ा रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है। एक आत्मामें ही रहना वह हितकारी, कल्याणकारी और सर्वस्व है ॥ २५९ ॥

❀

शुद्धात्माको जाने बिना भले ही क्रियाके ढेर लगा दे, परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता; ज्ञानसे ही आत्मा जाना जा सकता है ॥ २६० ॥

❀

दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर तू आगे बढ़ तो सिद्ध भगवान जैसी दशा हो जायगी। यदि स्वभावमें अधूरापन मानेगा तो पूर्णताको कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा। इसलिये तू अधूरा नहीं, पूर्ण है—ऐसा मान ॥ २६१ ॥

❀

द्रव्य सूक्ष्म है; इसलिये उपयोगको सूक्ष्म कर तो सूक्ष्म द्रव्य पकड़में आयगा। सूक्ष्म द्रव्यको पकड़कर आरामसे आत्मामें बैठना वह विश्राम है॥ २६२॥

❀

साधना करनेवालेको कोई स्पृहा नहीं होती। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये, एक आत्मा ही चाहिये। इस क्षण वीतरागता होती हो तो दूसरा कुछ ही नहीं चाहिये; परन्तु अंतरमें नहीं रहा जाता, इसलिये बाहर आना पड़ता है। अभी केवलज्ञान होता हो तो बाहर ही न आयें॥ २६३॥

❀

तेरे चित्तमें जब तक दूसरा रंग समाया है, तब तक आत्माका रंग नहीं लग सकता। बाहरका सारा रस छूट जाय तो आत्मा—ज्ञायकदेव प्रगट होता है। जिसे गुणरत्नोंसे गुँथा हुआ आत्मा मिल जाय, उसे इन तुच्छ विभावोंसे क्या प्रयोजन? २६४॥

❀

आत्मा जाननेवाला है, सदा जागृतस्वरूप ही है।

सकते, आत्माकी ज्ञातृत्वधाराको नहीं तोड़ सकते। पुद्गलपरिणतिरूप उपसर्ग कहीं आत्मपरिणतिको नहीं बदल सकते ॥ २६८ ॥

❁

अहो! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं, उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरुका दासत्व चाहिये।

पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। वह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेवका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुत-ज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परम-उपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधि-तारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरंतर हो ॥ २६९ ॥

❁

अपनी जिज्ञासा ही मार्ग बना लेती है। शास्त्र साधन हैं, परन्तु मार्ग तो अपनेसे ही ज्ञात होता है। अपनी गहरी तीव्र रुचि और सूक्ष्म उपयोगसे मार्ग ज्ञात होता है। कारण देना चाहिये ॥ २७० ॥

❀

जिसको जिसे तन्मयतासे लगन हो उसे वह नहीं भूलता। 'यह शरीर सो मैं' वह नहीं भूलता। नींदमें भी शरीरके नामसे बुलाये तो उत्तर देता है, क्योंकि शरीरके साथ तन्मयताकी मान्यताका अनादि अभ्यास है। अनभ्यस्त ज्ञायकके अन्दर जानेके लिये सूक्ष्म होना पड़ता है, धीर होना पड़ता है, स्थिर होना पड़ता है; वह कठिन लगता है। बाह्य कार्योंका अभ्यास है इसलिये सरल लगते हैं। लेकिन जब भी कर तब तुझे ही करना है ॥ २७१ ॥

❀

जो खूब थका हुआ है, द्रव्यके सिवा जिसे कुछ चाहिये ही नहीं, जिसे आशा-पिपासा छूट गई है, द्रव्यमें जो हो वही जिसे चाहिये, वह सच्चा जिज्ञासु है।

द्रव्य जो कि शान्तिमय है वही मुझे चाहिये —ऐसी निस्पृहता आये तो द्रव्यमें गहरा जाये और सब पर्याय प्रगट हो ॥ २७२ ॥

❀

गुरुके हितकारी उपदेशके तीक्ष्ण प्रहारोंसे सच्चे मुमुक्षुका आत्मा जाग उठता है और ज्ञायककी रुचि प्रगट होती है, बारम्बार चेतनकी ओर—ज्ञायककी ओर झुकाव होता है। जैसे भक्तको भगवान मुश्किलसे मिले हों तो उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार 'हे चेतन', 'हे ज्ञायक'—ऐसा बारम्बार अंतरमें होता रहता है, उसी ओर रुचि बनी रहती है; 'चलते-फिरते प्रभुकी याद आये रे'—ऐसा बना रहता है ॥ २७३ ॥

❀

अनंत कालमें चैतन्यकी महिमा नहीं आयी, विभावकी तुच्छता नहीं लगी, परसे और विभावसे विरक्तता नहीं हुई, इसलिये मार्ग नहीं मिला ॥ २७४ ॥

❀

पंचम काल है इसलिये बाहर फेरफार होता है, परन्तु जिसे आत्माका कल्याण करना है उसे काल बाधक नहीं होता ॥२७५॥

❀

'शुभाशुभ भावसे भिन्न, मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रत्येक प्रसंगमें याद रखना। भेदज्ञानका अभ्यास करना ही मनुष्यजीवनकी सार्थकता है ॥२७६॥

❀

[illegible] [illegible] नहीं है, विभावकी तुच्छता नहीं लगती, अंतरमें उतनी उत्कंठा नहीं है; फिर कार्य कहाँसे हो? अंतरमें उत्कंठा जागृत हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं। स्वयं आलसी हो गया है। 'करूँगा, करूँगा' कहता है परन्तु करता नहीं है। कोई [illegible] आलसी होते हैं कि सोते हों तो उठते नहीं हैं, और बैठे हों तो खड़े होनेमें आलस्य करते [illegible] [illegible] [illegible]

जाता है ॥२७७॥

❀

जैसे किसीको ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके शिखर पर अधिक ताप और तीव्र तृषा लगी हो, उस समय पानीकी एक बूँदकी ओर भी उसका लक्ष जाता है और वह उसे लेनेको दौड़ता है, उसी प्रकार जिस जीवको संसारका ताप लगा हो और सत्की तीव्र पिपासा जागी हो, वह सत्की प्राप्तिके लिये उग्र प्रयत्न करता है। वह आत्मार्थी जीव 'ज्ञान' लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्माकी प्रतीति करके अंतरसे उसके अस्तित्वको ख्यालमें ले, तो उसे ज्ञायक तत्त्व प्रगट हो ॥२७८॥

❀

विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायक तत्त्व सो आत्मा है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है; उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तिपना ख्यालमें आये, 'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरंतर घोटन रहे, वह भी अच्छा है। पुरुषार्थकी उग्रता तथा उस

लगाये तो ज्ञायकके साथ तदाकारता हो ॥ २९० ॥

❀

जिनेन्द्रमन्दिर, जिनेन्द्रप्रतिमा मंगलस्वरूप हैं; तो फिर समवसरणमें विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रभगवानकी महिमा और उनके मंगलपनेका क्या कहना! सुरेन्द्र भी भगवानके गुणोंकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे? २९१ ॥

❀

जिस समय ज्ञानीकी परिणति बाहर दिखायी दे उसी समय उन्हें ज्ञायक भिन्न वर्तता है। जैसे किसीको पड़ौसीके साथ बड़ी मित्रता हो, उसके घर जाता-आता हो, परन्तु वह पड़ौसीको अपना नहीं मान लेता, उसी प्रकार ज्ञानीको विभावमें कभी एकत्व-परिणमन नहीं होता। ज्ञानी सदा कमलकी भाँति निर्लेप रहते हैं, विभावसे भिन्नरूप ऊपर-ऊपर तैरते रहते हैं ॥ २९२ ॥

❀

ज्ञानीको तो ऐसी ही भावना होती है कि इस

समय पुरुषार्थ चले तो इसी समय मुनि होकर केवल-ज्ञान प्राप्त कर लें। बाहर आना पड़े वह अपनी निर्बलताके कारण है ॥ २९३ ॥

❀

ज्ञानीको 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखंडित रहती है। वे भक्ति-शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगोंमें उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखंडितरूपसे अंतरमें भिन्न ही कार्य करती रहती है ॥ २९४ ॥

❀

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षासे साधकको किसी पर्यायका या गुणभेदका स्वीकार नहीं है तथापि उसे स्वरूपमें स्थिर हो जानेकी भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूपसे वेदनमें आती है और वीतरागता-अंशरूप अंतर्मुखता सुखरूपसे वेदनमें आती है। जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो उससे साधक न्यारका न्यारा रहता है। आँखमें किरकिरी नहीं समाती उसी प्रकार चैतन्यपरिणतिमें विभाव नहीं समाता। यदि साधकको

बाह्यमें—प्रशस्त-अप्रशस्त रागमें—दुःख न लगे और अंतरमें—वीतरागतामें—सुख न लगे तो वह अंतरमें क्यों जाये? कहीं रागके विषयमें 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्त रागको 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषामें कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभावका अंश वह दुःखरूप है। भले ही उच्चमें उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो तथापि जितनी प्रवृत्ति उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूपमें लीन हुआ उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है ॥२९५॥

❀

द्रव्य तो सूक्ष्म है, उसे पकड़नेके लिये सूक्ष्म उपयोग कर। पातालकुएँकी भाँति द्रव्यमें गहराई तक उतर जा तो अंतरसे विभूति प्रगट होगी। द्रव्य आश्चर्यकारी है ॥२९६॥

❀

तेरा कार्य तो तत्त्वानुसारी परिणमन करना है। जड़के कार्य तेरे नहीं हैं। चेतनके कार्य चेतन होते हैं। वैभाविक कार्य भी परमार्थसे तेरे नहीं हैं।

जीवनमें ऐसा ही घुट जाना चाहिये कि जड़ और विभाव वे पर हैं, मैं वह नहीं हूँ ॥ २९७ ॥

❀

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाये तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभावके चाहे जितने उदय आयें तथापि चलित नहीं होता। बाहरके प्रतिकूल संयोगसे ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धामें फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है ॥ २९८ ॥

❀

वस्तु स्वतःसिद्ध है। उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है, प्रतिकूल नहीं। स्वतःसिद्ध आत्मवस्तुका दर्शनज्ञानरूप स्वभाव उसे अनुकूल है, राग-द्वेषरूप विभाव प्रतिकूल है ॥ २९९ ॥

❀

परिभ्रमण करते अनंत काल बीत गया। उस अनंत कालमें जीवने 'आत्माका करना है' ऐसी भावना तो की परन्तु तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया।

विद्यमान है वह कहाँ जायगा? अवश्य प्राप्त होगा ही ॥ २०६ ॥

❀

तत्त्वका उपदेश असिधारा समान है; तदनुसार परिणमित होने पर मोह भाग जाता है ॥ २०७ ॥

❀

द्रव्य-गुण-पर्यायमें सारे ब्रह्माण्डका तत्त्व आ जाता है। 'प्रत्येक द्रव्य अपने गुणोंमें रहकर स्वतंत्ररूपसे अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है', 'पर्याय द्रव्यको पहुँचती है, द्रव्य पर्यायको पहुँचता है'—ऐसी-ऐसी सूक्ष्मताको यथार्थरूपसे लक्षमें लेने पर मोह कहाँ खड़ा रहेगा? २०८ ॥

❀

बकरियोंकी टोलीमें रहनेवाला पराक्रमी सिंहका बच्चा अपनेको बकरीका बच्चा मान ले, परन्तु सिंहको देखने पर और उसकी गर्जना सुनने पर 'मैं तो इस जैसा सिंह हूँ' ऐसा समझ जाता है और सिंहरूपसे पराक्रम प्रगट करता है, उसी प्रकार पर और विभावके बीच

रहनेवाले इस जीवने अपनेको पर एवं विभावरूप मान लिया है, परन्तु जीवका मूल स्वरूप बतलानेवाली गुरुकी वाणी सुनने पर वह जाग उठता है—'मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा समझ जाता है और ज्ञायकरूप परिणमित हो जाता है ॥ ३०९ ॥

❀

चैतन्यलोक अद्भुत है। उसमें ऋद्धिकी न्यूनता नहीं है। रमणीयतासे भरे हुए इस चैतन्यलोकमेंसे बाहर आना नहीं सुहाता। ज्ञानकी ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समयमें इस निज ऋद्धिको तथा अन्य सबको जान ले। वह अपने क्षेत्रमें निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है। अंतरमें रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता ॥ ३१० ॥

❀

वस्तु तो अनादि-अनंत है। जो पलटता नहीं है—बदलता नहीं है उस पर दृष्टि करे, उसका ध्यान करे, वह अपनी विभूतिका अनुभव करता है। बाहरके

तक पहुँचना तो अपनेको ही है ॥ ३१३ ॥

खण्डखण्डरूप ज्ञानका उपयोग भी परवशता है। परवश सो दुःखी और स्ववश सो सुखी है। शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्वके आश्रयरूप स्ववशतासे शाश्वत सुख प्रगट होता है ॥ ३१४ ॥

द्रव्यदृष्टि शुद्ध अंतःतत्त्वका ही अवलम्बन करती है। निर्मल पर्याय भी बहिःतत्त्व है, उसका अवलम्बन द्रव्यदृष्टिमें नहीं है ॥ ३१५ ॥

अपनी महिमा ही अपनेको तारती है। बाहरी भक्ति-महिमासे नहीं परन्तु चैतन्यकी परिणतिमें चैतन्यकी निज महिमासे तरा जाता है। चैतन्यकी महिमावंतको भगवानकी सच्ची महिमा होती है। अथवा भगवानकी महिमा समझना वह निज चैतन्य-महिमाको समझनेमें निमित्त होता है ॥ ३१६ ॥

मुनिराज वंदना-प्रतिक्रमणादिमें लाचारीसे युक्त होते हैं। केवलज्ञान नहीं होता इसलिये युक्त होना पड़ता है। भूमिकानुसार वह सब आता है परन्तु स्वभावसे विरुद्ध होनेके कारण उपाधिरूप लगता है। स्वभाव निष्क्रिय है उसमेंसे मुनिराजको बाहर आना नहीं सुहाता। जिसे जो कार्य न रुचे वह कार्य उसे [illegible] लगता है ॥३१७॥

❀

[illegible] अपनी लगनसे ज्ञायकपरिणतिको प्राप्त करता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभावभावसे भिन्न हूँ, किसी भी [illegible] मैं नहीं हूँ, मैं अगाध गुणोंसे [illegible] हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं परमपारिणामिकभाव हूँ—[illegible], अनेक प्रकारके विचार सम्यक् प्रतीतिकी [illegible] आते हैं। परन्तु [illegible] सम्यक् प्रतीतिका [illegible] प्रतीतिके लिये [illegible]

आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्यायकी दृष्टिसे भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टिमें मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्यका ही स्वीकार होता है ॥२२१॥

❀

ज्ञानीकी दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद नहीं करती। साथमें रहनेवाला ज्ञान विवेक करता है कि 'यह चैतन्यके भाव हैं, यह पर है'। दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद करनेको खड़ी नहीं रहती। दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही, इतनी कचास तो है'। ज्ञान सभी प्रकारका विवेक करता है ॥२२२॥

❀

जिसे थोड़ी भी शान्तिका वेदन वर्त रहा है ऐसा ज्ञानी जीव दाहसे अर्थात् रागसे दूर भागता है एवं शीतलताकी ओर ढलता है ॥ २२३ ॥

ॐ

जैसे एक रत्नका पर्वत हो और एक रत्नका कण हो वहाँ कण तो नमूनेरूप है, पर्वतका प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है; उसी प्रकार केवलज्ञानकी महिमा श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अत्यधिक है। एक समयमें सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको सम्पूर्णरूपसे जाननेवाले केवलज्ञानमें और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञानमें—भले ही वह अंतर्मुहूर्तमें सर्व श्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवलीका श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अंतर है। जहाँ ज्ञान अनंत किरणोंसे प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्यकी चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गई—ऐसे पूर्ण क्षायिक ज्ञानमें और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानमें अनन्तगुना अंतर है ॥ २२४ ॥

ॐ

ज्ञानीको स्वानुभूतिके समय या उपयोग बाहर आये तब दृष्टि तो सदा [illegible] ही [illegible] रहती

है। बाह्यमें एकमेक हुआ दिखायी दे तब भी वह तो (दृष्टि-अपेक्षासे) गहरी अंतर्गुफामेंसे बाहर निकलता ही नहीं ॥ ३२५ ॥

❀

जिसने तलको स्पर्श किया उसे बाहर सब थोथा लगता है। चैतन्यके तलमें पहुँच गया वह चैतन्यकी विभूतिमें पहुँच गया ॥ ३२६ ॥

❀

देवलोकमें उच्च प्रकारके रत्न और महल हों उससे आत्माको क्या? कर्मभूमिके मनुष्य भोजन पकाकर खाते हैं वहाँ भी आकुलता और देवोंके कण्ठमें अमृत झरता है वहाँ भी आकुलता ही है। छह खण्डको साधनेवाले चक्रवर्तीके राज्यमें भी आकुलता है। अंतरकी ऋद्धि न प्रगटे, शान्ति न प्रगटे, तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे? ३२७ ॥

❀

मुनिदशाका क्या कहना! मुनि तो प्रमत्त-अप्रमत्तपनेमें सदा झूलनेवाले हैं! उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा

जा सकता है! २२८॥

❁

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूपसे चैतन्यनगरमें प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धिका अनुभव करते हैं। उस दशामें, अनन्त गुणोंसे भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकारकी चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगोंमें एवं आश्चर्यकारी आनन्दतरंगोंमें डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीवका यह स्वसंवेदन कोई और ही है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूपसे अलौकिक ऋद्धिका अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेवके दर्शन होंगे ॥ २२९ ॥

❁

अहो! मुनिराज तो निजात्मधाममें निवास करते हैं। उसमें विशेष-विशेष एकाग्र होते-होते वे वीतरागताको प्राप्त करते हैं।

वीतरागता होनेसे उन्हें ज्ञानकी अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है। ज्ञानका अंतर्मुहूर्तका स्थूल उपयोग छूटकर एक समयका सूक्ष्म उपयोग हो जाता है। वह

ज्ञान अपने क्षेत्रमें रहकर सर्वत्र पहुँच जाता है—लोकालोकको जान लेता है, भूत-वर्तमान-भविष्यकी सर्व पर्यायोंको क्रम पड़े बिना एक समयमें वर्तमानवत् जानते हैं, स्वपदार्थ तथा अनन्त परपदार्थोंकी तीनों कालकी पर्यायोंके अनंत-अनंत अविभाग प्रतिच्छेदोंको एक समयमें प्रत्यक्ष जानते हैं।—ऐसे अचिंत्य महिमावंत केवलज्ञानको वीतराग मुनिराज प्राप्त करते हैं।

केवलज्ञान प्रगट होने पर, जैसे कमल हजार पंखुरियोंसे खिल उठता है तदनुसार, दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव अनंत गुणोंकी अनंत पंखुरियोंसे खिल उठता है। केवलज्ञानी भगवान चैतन्यमूर्तिके ज्ञान-आनन्दादि अनंत गुणोंकी पूर्ण पर्यायोंमें सादि-अनंत केलि करते हैं; निजधामके भीतर शाश्वतरूपसे विराज गये हैं, उसमेंसे कभी बाहर आते ही नहीं ॥२३०॥

❁

कहीं रुके बिना 'ज्ञायक हूँ' इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका प्रयत्न करना। ज्ञायकका घोटन करते रहना ॥ २३१ ॥

❁

एकान्तसे दुःखके बलसे अलग हो ऐसा नहीं है, परन्तु द्रव्यदृष्टिके बलसे अलग होता है। दुःख लगता हो, सुहाता न हो, परन्तु आत्माको पहिचाने बिना—जाने बिना जाय कहाँ? आत्माको जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण किया हो, तभी अलग होता है ॥३३२॥

❀

चेतकर रहना। 'मुझे आता है' ऐसे जानकारीके गर्वके मार्ग पर नहीं जाना। विभावके मार्ग पर तो अनादिसे चल ही रहा है। वहाँसे रोकनेके लिये सिर पर गुरु होना चाहिये। एक अपनी लगाम और दूसरी गुरुकी लगाम हो तो जीव पीछे मुड़े।

जानकारीके मानसे दूर रहना अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है। ये सब प्रसंग निःसार हैं; सारभूत एक आत्मस्वभाव है ॥३३३॥

❀

आत्मार्थीको श्री गुरुके सान्निध्यमें पुरुषार्थ सहज ही होता है। मैं तो सेवक हूँ—ऐसी दृष्टि रहना चाहिये। 'मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव हो तो सेवकता छूट जाता

आत्मिक विभूति प्रगट होती है। अगाध शक्तिमेंसे क्या नहीं आता? ३४१॥

❀

अंतरमें तू अपने आत्माके साथ प्रयोजन रख और बाह्यमें देव-शास्त्र-गुरुके साथ; बस, अन्यके साथ तुझे क्या प्रयोजन है?

जो व्यवहारसे साधनरूप कहे जाते हैं, जिनका आलम्बन साधकको आये बिना नहीं रहता—ऐसे देव-शास्त्र-गुरुके आलम्बनरूप शुभ भाव भी परमार्थसे हेय हैं, तो फिर अन्य पदार्थ या अशुभ भावोंकी तो बात ही क्या? उनसे तुझे क्या प्रयोजन है?

आत्माकी मुख्यतापूर्वक देव-शास्त्र-गुरुका आलम्बन साधकको आता है। मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने भी कहा है कि 'हे जिनेन्द्र! मैं किसी भी स्थान पर होऊँ, (परन्तु) पुनः पुनः आपके पादपंकजकी भक्ति हो'!—ऐसे भाव साधकदशामें आते हैं, और साथ ही साथ आत्माकी मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है ॥३४२॥

❀

अनंत जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर, विभावको टालकर, सिद्ध हुए हैं; इसलिये यदि तुझे सिद्धमण्डलीमें सम्मिलित होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर।

किसी भी जीवको पुरुषार्थ किये बिना तो भवान्त होना ही नहीं है। वहाँ कोई जीव तो, जैसे घोड़ा छलाँग मारता है वैसे, उग्र पुरुषार्थ करके त्वरासे वस्तुको पहुँच जाता है, तो कोई जीव धीरे-धीरे पहुँचता है।

वस्तुको पाना, उसमें स्थिर रहना और आगे बढ़ना—सब पुरुषार्थसे ही होता है। पुरुषार्थ बाहर जाता है उसे अंतरमें लाओ। आत्माके जो सहज स्वभाव हैं वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे ॥ ३४३ ॥

❀

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्यालमें न आये, तब तक अंतरमें मार्ग कहाँसे सूझे और कहाँसे प्रगट हो? इसलिये सामान्य तत्त्वको ख्यालमें लेकर उसका आश्रय करना चाहिये। साधकको आश्रय तो प्रारम्भसे पूर्णता तक एक ज्ञायकका ही—द्रव्यसामान्यका ही—

ध्रुव तत्त्वका ही होता है। ज्ञायकका—'ध्रुव'का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायकके सिवा किसीको स्वीकार नहीं करती—ध्रुवके सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टिका विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेवका ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है ॥ ३४४॥

❀

पूज्य गुरुदेवने तो सारे भारतके जीवोंको जागृत किया है। सैकड़ों वर्षमें जो स्पष्टता नहीं हुई थी इतनी अधिक मोक्षमार्गकी स्पष्टता की है। छोटे-छोटे बालक भी समझ सकें ऐसी भाषामें मोक्षमार्गको खोला है। अद्‌भुत प्रताप है। अभी तो लाभ लेनेका काल है॥ २४६ ॥

❀

मुझे कुछ नहीं चाहिये, एक शान्ति चाहिये, कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। विभावमें तो आकुलता ही है। अशुभसे ऊबकर शुभमें और शुभसे थककर अशुभमें—ऐसे अनंत-अनंत काल बीत गया। अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिये।—इस प्रकार अंतरमें गहराईसे भावना जागे और वस्तुका स्वरूप कैसा है उसकी पहिचान करे, प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे॥ २४७ ॥

❀

रुचिकी उग्रतामें पुरुषार्थ सहज लगता है और रुचिकी मन्दतामें कठिन लगता है। रुचि मन्द हो जाने पर इधर-उधर लग जाय तब कठिन लगता

ध्रुव तत्त्वका ही होता है। ज्ञायकका—'ध्रुव'का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायकके सिवा किसीको स्वीकार नहीं करती—ध्रुवके सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टिका विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेवका ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है ॥ ३४४॥

❀

मोक्षमार्गका स्वरूप संक्षेपमें कहें तो 'अंतरमें ज्ञायक आत्माको साध'। यह थोड़ेमें बहुत कहा जा चुका। विस्तार किया जाय तो अनंत रहस्य निकले, क्योंकि वस्तुमें अनंत भाव भरे हैं। सर्वार्थसिद्धिके देव तेतीस-तेतीस सागरोपम जितने काल तक धर्मचर्चा, जिनेन्द्रस्तुति इत्यादि करते रहते हैं। उस सबका संक्षेप यह है कि—'शुभाशुभ भावोंसे न्यारा एक ज्ञायकका आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति करनी' ॥ ३४५ ॥

❀

पूज्य गुरुदेवने तो सारे भारतके जीवोंको जागृत किया है। सैकड़ों वर्षमें जो स्पष्टता नहीं हुई थी इतनी अधिक मोक्षमार्गकी स्पष्टता की है। छोटे-छोटे बालक भी समझ सकें ऐसी भाषामें मोक्षमार्गको खोला है। अद्‌भुत प्रताप है। अभी तो लाभ लेनेका काल है ॥ ३४६ ॥

❀

मुझे कुछ नहीं चाहिये, एक शान्ति चाहिये, कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। विभावमें तो आकुलता ही है। अशुभसे ऊबकर शुभमें और शुभसे थककर अशुभमें—ऐसे अनंत-अनंत काल बीत गया। अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिये।—इस प्रकार अंतरमें गहराईसे भावना जागे और वस्तुका स्वरूप कैसा है उसकी पहिचान करे, प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे ॥ ३४७ ॥

❀

रुचिकी उग्रतामें पुरुषार्थ सहज लगता है और रुचिकी मन्दतामें कठिन लगता है। रुचि मन्द हो जाने पर इधर-उधर लग जाय तब कठिन लगता

होगा तभी तो चले गये होंगे न ? इसलिये, हे जीव ! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्माकी महिमा लाकर, अपने स्वयंसे उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ कर । तू स्थिरता-अपेक्षासे बाहरका सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षासे तो छोड़ ! छोड़नेसे तेरा कुछ नहीं जायगा, उलटा परम पदार्थ—आत्मा—प्राप्त होगा ॥ ३४९ ॥

❀

जीवोंको ज्ञान और क्रियाके स्वरूपकी खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणाका सेवन करते हैं। बाह्य ज्ञानको, भंगभेदके प्रश्नोत्तरोंको, धारणाज्ञानको वे 'ज्ञान' मानते हैं और परद्रव्यके ग्रहण-त्यागको, शरीरादिकी क्रियाको, अथवा अधिक करें तो शुभ भावको, वे क्रिया कल्पते हैं। 'मुझे इतना आता है, मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या संतोषमें रहते हैं।

ज्ञायककी स्वानुभूतिके बिना 'ज्ञान' होता नहीं है और ज्ञायकके दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूपसे परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं। पौद्गलिक क्रिया

आत्मा कहाँ कर सकता है? जड़के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है; आत्मासे जड़के कार्य कभी नहीं होते। 'शरीरादिके कार्य मेरे नहीं हैं और विभाव कार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ' —ऐसी साधककी परिणति होती है। सच्चे मोक्षार्थीको भी अपने जीवनमें ऐसा घुँट जाना चाहिये। भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिये। पश्चात् जल्दी अंतरका पुरुषार्थ करे तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो, देर करे तो देरसे हो। निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरता बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है।—इस विधिके सिवा मोक्ष प्राप्त करनेकी अन्य कोई विधि नहीं है ॥ २५० ॥

❁

किसी भी प्रसंगमें एकाकार नहीं हो जाना। मोक्षके सिवा तुझे और क्या प्रयोजन है? प्रथम भूमिकामें भी 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है।

जो मोक्षका अर्थी हो, संसारसे जो थक गया हो, उसके लिये गुरुदेवकी वाणीका प्रबल स्रोत बह रहा है जिसमेंसे मार्ग सूझता है। वास्तवमें तो

अंतरसे थकान लगे तो, ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझनेके बाद अंतर ही अंतरमें प्रयत्न करनेसे आत्मा मिल जाता है ॥ ३५१ ॥

❀

'द्रव्यसे परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृत-कृत्य हूँ' ऐसा मानते होने पर भी 'पर्यायमें तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधरदेव भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञानको नहीं पा सकता। आपके एक समयके ज्ञानमें समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनंत पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनंत-अनंत द्रव्य-पर्यायोंको जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य वैसी ही एक समयकी पर्याय परिणमित हो गई है; मेरी पर्याय तो अनन्तवें

भाग है'।

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षासे अपनेको भगवान मानता होने पर भी, पर्याय-अपेक्षासे—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायोंकी अपेक्षासे —अपनी पामरता जानता है ॥ ३५२ ॥

❀

सर्वोत्कृष्ट महिमाका भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभावमें स्थित है। मुनिराजने (नियमसारके टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने) इस परमपारिणामिक भावकी धुन लगायी है। यह पंचम भाव पवित्र है, महिमावंत है। उसका आश्रय करनेसे शुद्धिके प्रारम्भसे लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होने पर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रयसे शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव अवलम्बनके योग्य नहीं हैं।

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभावका ही—पारमार्थिक असली वस्तुका ही—आश्रय करने योग्य है, उसीकी शरण लेने योग्य है। उसीसे सम्यग्दर्शनसे लेकर मोक्ष तककी सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।

आत्मामें सहजभावसे विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं तथापि वे चेतनद्रव्यके एक-एक अंशरूप होनेके कारण उनका भेदरूपसे अवलम्बन लेने पर साधकको निर्मलता परिणमित नहीं होती।

इसलिये परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुणस्वरूप अभेद एक चेतनद्रव्यका ही—अखण्ड परमात्मद्रव्यका ही—आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसीकी शरण लेना, उसीका ध्यान करना, कि जिससे अनंत निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।

इसलिये द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तुको लक्षमें लेकर उसका अवलम्बन करो। वही,

पहिचाने या न पहिचाने, तू तो सदा ऐसा ही रहनेवाला है। मुनिके एवं सम्यग्दृष्टिके हृदयकमलके सिंहासनमें यह सहजतत्त्व निरंतर विराजमान है ॥ ३५९॥

❀

सम्यग्दृष्टिको पुरुषार्थसे रहित कोई काल नहीं है। पुरुषार्थ करके भेदज्ञान प्रगट किया तबसे पुरुषार्थकी धारा चलती ही है। सम्यग्दृष्टिका यह पुरुषार्थ सहज है, हठपूर्वक नहीं है। दृष्टि प्रगट होनेके बाद वह एक ओर पड़ी हो ऐसा नहीं है। जैसे अग्नि ढँकी पड़ी हो ऐसा नहीं है। अंतरमें भेदज्ञानका—ज्ञातृत्वधाराका प्रगट वेदन है। सहज ज्ञातृत्वधारा चल रही है वह पुरुषार्थसे चल रही है। परम तत्त्वमें अविचलता है। प्रतिकूलताके समूह आयें, सारे ब्रह्माण्डमें खलबली मच जाय, तथापि चैतन्यपरिणति न डोले—ऐसी सहज दशा है ॥ ३६० ॥

❀

तू ज्ञायकस्वरूप है। अन्य सब तुझसे अलग पड़ा है, मात्र तूने उसके साथ एकत्वबुद्धि की है।

'शरीर, वाणी आदि मैं नहीं हूँ, विभावभाव मेरा

स्वरूप नहीं है, जैसा सिद्धभगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है' ऐसी यथार्थ श्रद्धा कर।

शुभ भाव आयँगे अवश्य। परन्तु 'शुभ भावसे क्रमशः मुक्ति होगी, शुभ भाव चले जायँगे तो सब चला जायगा और मैं शून्य हो जाऊँगा'—ऐसी श्रद्धा छोड़।

तू अगाध अनंत स्वाभाविक शक्तियोंसे भरा हुआ एक अखण्ड पदार्थ है। उसकी श्रद्धा कर और आगे बढ़। अनंत तीर्थंकर आदि इसी मार्गसे मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ ३६१ ॥

❀

जिस प्रकार अज्ञानीको 'शरीर ही मैं हूँ, यह शरीर मेरा है' ऐसा सहज ही रहा करता है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता, उसीप्रकार ज्ञानीको 'ज्ञायक ही मैं हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है' ऐसी सहज परिणति वर्तती रहती है, घोखना नहीं पड़ता, याद नहीं करना पड़ता। सहज पुरुषार्थ वर्तता रहता है ॥ ३६२ ॥

❀

मुनिराज आश्चर्यकारी निज ऋद्धिसे भरे हुए चैतन्य-

शुद्ध चारित्रदशा निरंतर चलती ही रहती है। शुभ भाव नीचे ही रहते हैं; आत्मा ऊँचाका ऊँचा ही—ऊर्ध्व ही—रहता है। सब कुछ पीछे रह जाता है, आगे एक शुद्धात्मद्रव्य ही रहता है॥ ३६६॥

❀

जिनेन्द्रभगवानकी वाणीमें अतिशयता है, उसमें अनंत रहस्य होते हैं, उस वाणी द्वारा बहुत जीव मार्ग प्राप्त करते हैं। ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण चैतन्यतत्त्व उस वाणीमें भी नहीं आता। चैतन्यतत्त्व अद्‌भुत, अनुपम एवं अवर्णनीय है। वह स्वानुभवमें ही यथार्थ पहिचाना जाता है॥ ३६७॥

❀

पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, उत्तम कुल और सत्य धर्मका श्रवण उत्तरोत्तर दुर्लभ है। ऐसे सातिशय ज्ञानधारी गुरुदेव और उनकी पुरुषार्थप्रेरक वाणीके श्रवणका योग अनंत कालमें महापुण्योदयसे प्राप्त होता है। इसलिये प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करो। सब सुयोग प्राप्त हो गया है, उसका लाभ ले लो।

सावधान होकर शुद्धात्माको पहिचानकर भवभ्रमणका अन्त लाओ ॥ ३६८ ॥

❀

चैतन्यतत्त्वको पुद्गलात्मक शरीर नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्वको भवका परिचय नहीं है, नहीं है। चैतन्यतत्त्वको शुभाशुभ परिणति नहीं है, नहीं है। उसमें शरीरका, भवका, शुभाशुभ भावका संन्यास है।

जीवने अनंत भवोंमें परिभ्रमण किया, गुण हीनरूप या विपरीतरूप परिणमित हुए, तथापि मूल तत्त्व ज्योंका त्यों ही है, गुण ज्योंके त्यों ही हैं। ज्ञानगुण हीनरूप परिणमित हुआ उससे कहीं उसके सामर्थ्यमें न्यूनता नहीं आयी है। आनन्दका अनुभव नहीं है इसलिये आनन्दगुण कहीं चला नहीं गया है, नष्ट नहीं हो गया है, घिस नहीं गया है। शक्तिरूपसे सब ज्योंका त्यों रहा है। अनादि कालसे जीव बाहर भटकता है, अति अल्प जानता है, आकुलतामें रुक गया है, तथापि चैतन्यद्रव्य और उसके ज्ञान-आनन्दादि गुण ज्योंके त्यों स्वयमेव सुरक्षित रहे हैं, उनकी सुरक्षा नहीं करनी पड़ती।

जैसे स्वप्नके लड्डुओंसे भूख नहीं मिटती, जैसे मरीचिकाके जलसे प्यास नहीं बुझती, वैसे ही पर पदार्थोंसे सुखी नहीं हुआ जाता ।

‘इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे ।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ॥’

—यही सुखी होनेका उपाय है। विश्वास करो ॥ ३७१ ॥

❀

जैसे पातालकुआँ खोदने पर, पत्थरकी आखिरी पर्त टूटकर उसमें छेद हो जाने पर पानीकी जो ऊँची पिचकारी उड़ती है, उसे देखनेसे पातालके पानीका अंदरका भारी जोर ख्यालमें आता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग द्वारा गहराईमें चैतन्यतत्त्वके तल तक पहुँच जाने पर, सम्यग्दर्शन प्रगट होनेसे, जो आंशिक शुद्ध पर्याय फूटती है, उस पर्यायका वेदन करने पर चैतन्यतत्त्वका अंदरका अनंत ध्रुव सामर्थ्य अनुभवमें—स्पष्ट ख्यालमें आता है ॥ ३७२ ॥

❀

सब तालोंकी कुंजी एक—'ज्ञायकका अभ्यास करना'। इससे सब ताले खुल जायँगे। जिसे संसार-कारागृहसे छूटना हो, मुक्तिपुरीमें जाना हो, उसे मोह-राग-द्वेषरूप ताले खोलनेके लिये ज्ञायकका अभ्यास करनेरूप एक ही कुंजी लगानी चाहिये ॥ ३७३ ॥

❀

प्रगट होनेवाले औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भावरूप पर्यायें— [illegible] होनेवाली पर्यायें—वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता—उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभावका भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेषभाव है। सामान्यके आश्रयसे ही शुद्ध विशेष प्रगट होता है, ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिये सब छोड़कर, एक शुद्धात्म-द्रव्यके प्रति—अखण्ड परमपारिणामिकभावके प्रति—दृष्टि कर, उसीके ऊपर निरन्तर जोर रख, उसीकी ओर उपयोग ढले ऐसा कर ॥ २७६ ॥

❁

स्वभावमेंसे विशेष आनन्द प्रगट करनेके लिये मुनिराज जंगलमें बसे हैं। उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभावमें लीनता वर्तती है,—दिन-रात रोमरोममें एक आत्मा ही रम रहा है। शरीर है किन्तु शरीरकी कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है। उत्सर्ग एवं अपवादकी मैत्रीपूर्वक रहनेवाले

हैं। आत्माका पोषण करके निज स्वभावभावोंको पुष्ट करते हुए विभावभावोंका शोषण करते हैं। जिस प्रकार माताका पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर अधिक जोरसे पल्ला पकड़ लेता है, उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर प्रबल पुरुषार्थ-पूर्वक निजात्मद्रव्यको पकड़ लेते हैं। 'ऐसी पवित्र मुनि-दशा कब प्राप्त करेंगे!' ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टिको वर्तता है॥ २७७॥

❁

जिसे स्वभावकी महिमा जागी है ऐसे सच्चे आत्मार्थीको विषय-कषायोंकी महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। उसे चैतन्यस्वभावकी समझमें निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए उसे निरंतर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करनेका खटका लगा ही रहता है।

उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। स्वरूपमें स्थिर नहीं रहा जाता इसलिये वे विविध शुभभावोंमें युक्त होते हैं:—'मुझे देव-गुरुकी सदा समीपता हो, गुरुके चरणकमलकी सेवा हो' इत्यादि प्रकारसे जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन एवं गुरुसेवाके भाव होते हैं तथा शास्त्रस्वाध्यायके, ध्यानके, दानके, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादिके शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। इन सब भावोंके बीच ज्ञातृत्व-परिणतिकी धारा तो सतत चलती ही रहती है।

निजस्वरूपधाममें रमनेवाले मुनिराजको भी पूर्ण वीतरागदशाका अभाव होनेसे विविध शुभभाव होते हैं:—उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्तिके उल्लासमय भाव भी आते हैं। 'हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होनेसे, आपके चरणकमलकी प्राप्ति होनेसे, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ? अर्थात् आप मिलनेसे मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकारसे श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरोंने जिनेन्द्रभक्तिके स्रोत बहाये हैं। —ऐसे ऐसे

अनेक प्रकारके शुभभाव मुनिराजको भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायकके उग्र आलम्बनसे मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत चलती ही रहती है।

साधकको—मुनिको तथा सम्यग्दृष्टि श्रावकको—जो शुभभाव आते हैं वे ज्ञातृत्वपरिणतिसे विरुद्ध-स्वभाववाले होनेके कारण उनका आकुलतारूपसे—दुःखरूपसे वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिकामें आये बिना नहीं रहते।

साधककी दशा एकसाथ त्रिपटी (—तीन विशेषताओं-वाली) है:—एक तो, उसे ज्ञायकका आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्यके प्रति जोर निरंतर वर्तता है जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांशकी भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांशका सुखरूपसे वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावोंका समावेश है उसका—दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदन होता है।

साधकको शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं।

यों तो साधकके वे भाव हठरहित सहजदशाके हैं, अज्ञानीकी भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभवमें दुःख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भयसे जबरन् कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। शुभभावोंके साथ-साथ वर्तती, ज्ञायकका अवलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति वही साधकको सुखरूप ज्ञात होती है।

जिस प्रकार हाथीके बाहरके दाँत—दिखानेके दाँत अलग होते हैं और भीतरके दाँत—चबानेके दाँत अलग होते हैं, उसी प्रकार साधकको बाह्यमें उत्साहके कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें वे अलग होते हैं और अंतरमें आत्मशान्तिका—आत्मतृप्तिका स्वाभाविक परिणमन अलग होता है। बाह्य क्रियाके आधारसे साधकका अंतर नहीं पहिचाना जाता ॥ ३७८ ॥

❀

जगतमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु तेरा आत्मा ही है। उसमें चैतन्यरस और आनन्द भरे हैं। वह गुणमणियोंका भण्डार है। ऐसे दिव्यस्वरूप आत्माकी दिव्यताको तू नहीं पहिचानता और परवस्तुको मूल्यवान

मानकर उसे प्राप्त करनेका परिश्रम कर रहा है! परवस्तु तीन कालमें कभी किसीकी नहीं हुई है, तू व्यर्थ भ्रमणासे उसे अपनी बनानेका प्रयत्न करके अपना अहित कर रहा है! ३७९॥

❁

जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगती, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नोंकी चमक प्रगट होगी ॥ ३८०॥

❁

जीव भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ ले, वाद-विवाद करना जाने, प्रमाण-नय-निक्षेपादिसे वस्तुकी तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञानको विचारोंमें विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्माके अस्तित्वको न पकड़े और तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेयनिमग्न रहता है, जो-जो बाहरका जाने उसमें तल्लीन हो जाता है, मानों ज्ञान बाहरसे आता हो ऐसा भाव वेदता रहता है। सब पढ़ गया, अनेक युक्ति-न्याय जाने, अनेक

विचार किये, परन्तु जाननेवालेको नहीं जाना, ज्ञानकी असली भूमि दृष्टिगोचर नहीं हुई, तो वह सब जाननेका फल क्या? शास्त्राभ्यासादिका प्रयोजन तो ज्ञानस्वरूप आत्माको जानना है ॥ ३८१ ॥

आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं, पूर्ण भरा हुआ है। उसमें अनंत गुणरत्नोंके कमरे भरे हैं। उस अद्भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे तो तुझे संतोष होगा कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'। उसमें स्थिर होनेसे तू पर्यायमें कृतकृत्य हो जायगा ॥ ३८२ ॥

ज्ञायकस्वभाव आत्माका निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञानका उपयोग जो बाह्यमें जाता है उसे अंतरमें समेट लेना, बाहर जाते हुए उपयोगको ज्ञायकके अवलम्बन द्वारा बारम्बार अंतरमें स्थिर करते रहना, वही शिवपुरी पहुँचनेका राजमार्ग है। ज्ञायक आत्माकी

अनुभूति वही शिवपुरीकी सड़क है, वही मोक्षका मार्ग है। दूसरे सब उस मार्गका वर्णन करनेके भिन्नभिन्न प्रकार हैं। जितने वर्णनके प्रकार हैं, उतने मार्ग नहीं हैं; मार्ग तो एक ही है ॥ ३८३ ॥

❀

तेरे आत्मामें निधान ठसाठस भरे हैं। अनंत-गुणनिधानको रहनेके लिये अनंत क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशोंके क्षेत्रमें ही अनंत गुण ठसाठस भरे हैं। तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है? तुझमें है उसे देख न! तुझमें क्या कमी है? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है। सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है। एक बार तू अंतरमें प्रवेश कर, सब अन्तरमें है। अन्तरमें गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधानके प्रगट अंशको वेदकर तू तृप्त हो जायगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना जिससे पूर्ण निधानका भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा ॥ ३८४ ॥

❀

जीवने अनन्त कालमें अनन्त बार सब कुछ किया परन्तु आत्माको नहीं पहिचाना। देव-गुरु क्या कहते हैं वह बराबर जिज्ञासासे सुनकर, विचार करके, यदि आत्माकी ठोस भूमि जो आत्म-अस्तित्व उसे ख्यालमें लेकर निजस्वरूपमें लीनता की जाय तो आत्मा पहिचाननेमें आये—आत्माकी प्राप्ति हो। इसके सिवा बाहरसे जितने मिथ्या प्रयत्न किये जायँ वे सब भूसा कूटनेके बराबर हैं ॥ ३८५॥

❀

बाह्य क्रियाएँ मार्ग नहीं बतलातीं, ज्ञान मार्ग बतलाता है। मोक्षके मार्गका प्रारम्भ सच्ची समझसे होता है, क्रियासे नहीं। इसलिये प्रत्यक्ष गुरुका उपदेश और परमागमका प्रयोजनभूत ज्ञान मार्गप्राप्तिके प्रबल निमित्त हैं। चैतन्यका स्पर्श करके निकलती हुई वाणी मुमुक्षुको हृदयमें उतर जाती है। आत्मस्पर्शी वाणी आती हो और जीव एकदम रुचिपूर्वक सुने तो सम्यक्त्वके निकट हो जाता है ॥ ३८६॥

❀

आत्मा उत्कृष्ट अजायबघर है। उसमें अनंत

गुणरूप अलौकिक आश्चर्य भरे हैं। देखने जैसा सब कुछ, आश्चर्यकारी ऐसा सब कुछ, तेरे अपने अजायबघरमें ही है, बाह्यमें कुछ नहीं है। तू उसीका अवलोकन कर न! उसके भीतर एक बार झाँकनेसे भी तुझे अपूर्व आनन्द होगा। वहाँसे बाहर निकलना तुझे सुहायगा ही नहीं। बाहरकी सर्व वस्तुओंके प्रति तेरा आश्चर्य टूट जायगा। तू परसे विरक्त हो जायगा ॥ ३८७ ॥

❁

मुनिराजको शुद्धात्मतत्त्वके उग्र अवलम्बन द्वारा आत्मामेंसे संयम प्रगट हुआ है। सारा ब्रह्माण्ड पलट जाये तथापि मुनिराजकी यह दृढ़ संयमपरिणति नहीं पलट सकती। बाहरसे देखने पर तो मुनिराज आत्मसाधनाके हेतु वनमें अकेले बसते हैं, परन्तु अंतरमें देखें तो अनंत गुणसे भरपूर स्वरूपनगरमें उनका निवास है। बाहरसे देखने पर भले ही वे क्षुधावंत हों, तृषावंत हों, उपवासी हों, परन्तु अंतरमें देखा जाये तो वे आत्माके मधुर रसका आस्वादन कर रहे हैं। बाहरसे देखने पर भले ही उनके चारों ओर घनघोर अंधेरा व्याप्त हो, परन्तु अंतरमें देखो तो

चला जाता है।

धर्मी जीव रोगकी, वेदनाकी या मृत्युकी चपेटमें नहीं आता, क्योंकि उसने शुद्धात्माकी शरण प्राप्त की है। विपत्तिके समय वह आत्मामेंसे शान्ति प्राप्त कर लेता है। विकट प्रसंगमें वह निज शुद्धात्माकी शरण विशेष लेता है। मरणादिके समय धर्मी जीव शाश्वत ऐसे निजसुखसरोवरमें विशेष-विशेष डुबकी लगा जाता है—जहाँ रोग नहीं है, वेदना नहीं है, मरण नहीं है, शान्तिकी अखूट निधि है। वह शान्तिपूर्वक देह छोड़ता है, उसका जीवन सफल है।

तू मरणका समय आनेसे पहले चेत जा, सावधान हो, सदा शरणभूत—विपत्तिके समय विशेष शरणभूत होनेवाले—ऐसे शुद्धात्मद्रव्यको अनुभवनेका उद्यम कर ॥ ४०९ ॥

❁

जिसने आत्माके मूल अस्तित्वको नहीं पकड़ा, 'स्वयं शाश्वत तत्त्व है, अनंत सुखसे भरपूर है' ऐसा अनुभव करके शुद्ध परिणतिकी धारा प्रगट नहीं की, उसने भले सांसारिक इन्द्रियसुखोंको नाशवंत और

भविष्यमें दुःखदाता जानकर छोड़ दिया हो और बाह्य मुनिपना ग्रहण किया हो, भले ही वह दुर्धर तप करता हो और उपसर्ग-परिषहमें अडिग रहता हो, तथापि उसे वह सब निर्वाणका कारण नहीं होता, स्वर्गका कारण होता है; क्योंकि उसे शुद्ध परिणमन बिलकुल नहीं वर्तता, मात्र शुभ परिणाम ही—और वह भी उपादेयबुद्धिसे—वर्तता है। वह भले नौ पूर्व पढ़ गया हो तथापि उसने आत्माका मूल द्रव्यसामान्य-स्वरूप अनुभवपूर्वक नहीं जाना होनेसे वह सब अज्ञान है।

सच्चे भावमुनिको तो शुद्धात्मद्रव्याश्रित मुनियोग्य उग्र शुद्धपरिणति चलती रहती है, कर्तापना तो सम्यग्दर्शन होने पर ही छूट गया होता है, उग्र ज्ञातृत्वधारा अटूट वर्तती रहती है, परम समाधि परिणमित होती है। वे शीघ्र-शीघ्र निजात्मामें लीन होकर आनन्दका वेदन करते रहते हैं; उनके प्रचुर स्वसंवेदन होता है। वह दशा अद्भुत है, जगतसे न्यारी है। पूर्ण वीतरागता न होनेसे उनके व्रत-तप-शास्त्ररचना आदिके शुभ भाव आते हैं अवश्य, परन्तु वे हेयबुद्धिसे

आते हैं। ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्तिका कारण है ॥४१०॥

❀

अनन्त कालसे जीव भ्रान्तिके कारण परके कार्य करनेका मिथ्या श्रम करता है; परन्तु परपदार्थके कार्य वह बिलकुल नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्ररूपसे परिणमित होता है। जीवके कर्ता-क्रिया-कर्म जीवमें हैं, पुद्‌गलके पुद्‌गलमें हैं। वर्ण-गंध-रस-स्पर्शादिरूपसे पुद्‌गल परिणमित होता है, जीव उन्हें नहीं बदल सकता। चेतनके भावरूपसे चेतन परिणमित होता है, जड़ पदार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकते।

तू ज्ञायकस्वभावी है। पौद्‌गलिक शरीर-वाणी-मनसे तो तू भिन्न ही है, परन्तु शुभाशुभ भाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। अज्ञानके कारण तूने परमें तथा विभावमें एकत्वबुद्धि की है, वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा। शुद्ध आत्मद्रव्यकी यथार्थ प्रतीति करके—शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्तिका प्रयाण प्रारम्भ होगा ॥४११॥

❀

मरण तो आना ही है जब सब कुछ छूट जायगा। बाहरकी एक वस्तु छोड़नेमें तुझे दुःख होता है, तो बाहरके समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा ? मरणकी वेदना भी कितनी होगी ? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? तू भले ही धनके ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियोंकी ओर तू भले ही दीनतासे टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है ? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मामेंसे शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभीसे वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरणमें लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवनमें एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ॥ ४१२ ॥

❀

आते हैं। ऐसी पवित्र मुनिदशा मुक्तिका कारण है ॥४१०॥

अनन्त कालसे जीव भ्रान्तिके कारण परके कार्य करनेका मिथ्या श्रम करता है, परन्तु परपदार्थके कार्य वह बिलकुल नहीं कर सकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र-रूपसे परिणमित होता है। जीवके कर्ता-क्रिया-कर्म जीवमें हैं, पुद्गलके पुद्गलमें हैं। वर्ण-गंध-रस-स्पर्शादिरूपसे पुद्गल परिणमित होता है, जीव उन्हें नहीं बदल सकता। चेतनके भावरूपसे चेतन परिणमित होता है, जड़ पदार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकते।

तू ज्ञायकस्वभावी है। पौद्गलिक शरीर-वाणी-मनसे तो तू भिन्न ही है, परन्तु शुभाशुभ भाव भी तेरा स्वभाव नहीं है। अज्ञानके कारण तूने परमें तथा विभावमें एकत्वबुद्धि की है, वह एकत्वबुद्धि छोड़कर तू ज्ञाता हो जा। शुद्ध आत्मद्रव्यकी यथार्थ प्रतीति करके —शुद्ध द्रव्यदृष्टि प्रगट करके, तू ज्ञायकपरिणति प्रगट कर कि जिससे मुक्तिका प्रयाण प्रारम्भ होगा ॥४११॥

मरण तो आना ही है जब सब कुछ छूट जायगा। बाहरकी एक वस्तु छोड़नेमें तुझे दुःख होता है, तो बाहरके समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा ? मरणकी वेदना भी कितनी होगी ? 'कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? तू भले ही धनके ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-सम्बन्धियोंकी ओर तू भले ही दीनतासे टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है ? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मामेंसे शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभीसे वह प्रयत्न कर। 'सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरणमें लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवनमें एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ॥ ४१२ ॥

❀

होगा और सुखकी घड़ी आयगी। ज्ञायककी प्रतीति हो और विभावकी रुचि छूटे—ऐसे प्रयत्नके पीछे विकल्प टूटेगा और सुखकी घड़ी आयगी। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भले ही पहले ऊपरी-भावसे कर, फिर गहराईसे कर, परन्तु चाहे जैसे करके उस मार्ग पर जा। शुभाशुभ भावसे भिन्न ज्ञायकका ज्ञायकरूपसे अभ्यास करके ज्ञायककी प्रतीति दृढ़ करना, ज्ञायकको गहराईसे प्राप्त करना, वही सादि-अनंत सुख प्राप्त करनेका उपाय है। आत्मा सुखका धाम है, उसमेंसे सुख प्राप्त होगा॥ ४१९॥

❀

प्रश्नः—जिज्ञासुको चौवीसों घंटे आत्माके विचार चलते हैं?

उत्तरः—विचार चौवीसों घंटे नहीं चलते। परन्तु आत्माका खटका, लगन, रुचि, उत्साह बना रहता है। 'मुझे आत्माका करना है, मुझे आत्माको पहिचानना है' इस प्रकार लक्ष बारम्बार आत्माकी ओर मुड़ता रहता है॥ ४२०॥

❀

प्रश्नः—मुमुक्षुको शास्त्रका अभ्यास विशेष रखना या चिंतनमें विशेष समय लगाना ?

उत्तरः—सामान्य अपेक्षासे तो, शास्त्राभ्यास चिंतन सहित होता है, चिंतन शास्त्राभ्यासपूर्वक होता है। विशेष अपेक्षासे, अपनी परिणति जिसमें टिकती हो और अपनेको जिससे विशेष लाभ होता दिखायी दे वह करना चाहिये। यदि शास्त्राभ्यास करनेसे अपनेको निर्णय दृढ़ होता हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत शास्त्राभ्यास विशेष करना चाहिये और यदि चिंतनसे निर्णयमें दृढ़ता होती हो, विशेष लाभ होता हो, तो ऐसा प्रयोजनभूत चिंतन विशेष करना चाहिये। अपनी परिणतिको लाभ हो वह करना चाहिये। अपनी चैतन्यपरिणति आत्माको पहिचाने यही ध्येय होना चाहिये। उस ध्येयकी सिद्धिके हेतु प्रत्येक मुमुक्षुको ऐसा ही करना चाहिये ऐसा नियम नहीं हो सकता ॥ ४२१ ॥

❁

प्रश्नः—विकल्प हमारा पीछा नहीं छोड़ते !

उत्तरः—विकल्प तुझे लगे नहीं हैं, तू विकल्पोंको

लगा है। तू हट जा न! विकल्पोंमें रंचमात्र सुख और शान्ति नहीं है, अंतरमें पूर्ण सुख एवं समाधान है।

पहले आत्मस्वरूपकी प्रतीति होती है, भेदज्ञान होता है, पश्चात् विकल्प टूटते हैं और निर्विकल्प स्वानुभूति होती है ॥ ४२२ ॥

❀

प्रश्नः—सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व कहा है, तो क्या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होने पर आत्माके सर्व गुणोंका आंशिक शुद्ध परिणमन वेदनमें आता है?

उत्तरः—निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्द-गुणकी आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने पर आत्माके सर्व गुणोंका (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणोंकी पर्यायोंका वेदन होता है।

आत्मा अखण्ड है, सर्व गुण आत्माके ही हैं, इसलिये एक गुणकी पर्यायका वेदन हो उसके साथ-साथ सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं। भले

ही सर्व गुणोंके नाम न आते हों, और सर्व गुणोंकी संज्ञा भाषामें होती भी नहीं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।

स्वानुभूतिके कालमें अनंतगुणसागर आत्मा अपने आनन्दादि गुणोंकी चमत्कारिक स्वाभाविक पर्यायोंमें रमण करता हुआ प्रगट होता है। वह निर्विकल्प दशा अद्‌भुत है, वचनातीत है। वह दशा प्रगट होने पर सारा जीवन पलट जाता है॥ ४२३ ॥

❀

प्रश्नः—आत्मद्रव्यका बहु भाग शुद्ध रहकर मात्र थोड़े भागमें ही अशुद्धता आयी है न ?

उत्तरः—निश्चयसे अशुद्धता द्रव्यके थोड़े भागमें भी नहीं आयी है, वह तो ऊपर-ऊपर ही तैरती है। वास्तवमें यदि द्रव्यके थोड़े भी भागमें अशुद्धता आये अर्थात् द्रव्यका थोड़ा भी भाग अशुद्ध हो जाय, तो अशुद्धता कभी निकलेगी ही नहीं, सदाकाल रहेगी ! बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव द्रव्यके ऊपर तैरते हैं परन्तु उसमें सचमुच स्थान नहीं पाते। शक्ति तो शुद्ध ही है,

व्यक्तिमें अशुद्धता आयी है ॥ ४२४ ॥

❀

प्रश्नः—जिज्ञासु जीव तत्त्वको यथार्थ धारण करने पर भी किस प्रकार अटक जाता है ?

उत्तरः—तत्त्वको धारण करने पर भी जगतके किन्हीं पदार्थोंमें गहरे-गहरे सुखकी कल्पना रह जाये अथवा शुभ परिणाममें आश्रयबुद्धि रह जाये—इत्यादि प्रकारसे वह जीव अटक जाता है। परन्तु जो खास जिज्ञासु—आत्मार्थी हो और जिसे खास प्रकारकी पात्रता प्रगट हुई हो वह तो कहीं अटकता ही नहीं, और उस जीवको ज्ञानकी कोई भूल रह गई हो तो वह भी स्वभावकी लगनके बलसे निकल जाती है; अंतरकी खास प्रकारकी पात्रतावाला जीव कहीं अटके बिना अपने आत्माको प्राप्त कर लेता है ॥ ४२५ ॥

❀

प्रश्नः—मुमुक्षुको सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तरः—अनादिकालसे आत्माने अपना स्वरूप

नहीं छोड़ा है, परन्तु भ्रान्तिके कारण 'छोड़ दिया है' —ऐसा उसे भासित हुआ है। अनादिकालसे द्रव्य तो शुद्धतासे भरा है, ज्ञायकस्वरूप ही है, आनन्दस्वरूप ही है। उसमें अनंत चमत्कारिक शक्ति भरी है।—ऐसे ज्ञायक आत्माको सबसे भिन्न—परद्रव्यसे भिन्न, परभावोंसे भिन्न—जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। भेदज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। ज्ञायक आत्माको पहिचानना चाहिये।

'ज्ञायकस्वरूप हूँ' ऐसा अभ्यास करना चाहिये, उसकी प्रतीति करना चाहिये; प्रतीति करके उसमें स्थिर हो जाने पर, उसमें जो अनंत चमत्कारिक शक्ति है वह प्रगट अनुभवमें आती है ॥ ४२६ ॥

❂

प्रश्नः—मुमुक्षु जीव पहले क्या करे?

उत्तरः—पहले द्रव्य-गुण-पर्याय—सबको पहिचाने। चैतन्यद्रव्यके सामान्यस्वभावको पहिचानकर, उस पर दृष्टि करके, उसका अभ्यास करते-करते चैतन्य उसमें स्थिर हो जाये, तो उसमें जो विभूति है वह प्रगट

भरी है वह अनुभवमें आती है; उपमा क्या दी जाय ? ४२८ ॥

⊛

प्रश्नः—प्रथम आत्मानुभव होनेसे पूर्व, अन्तिम विकल्प कैसा होता है ?

उत्तरः—अन्तिम विकल्पका कोई नियम नहीं है। भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मतत्त्वकी सन्मुखताका अभ्यास करते-करते चैतन्यतत्त्वकी प्राप्ति होती है। जहाँ ज्ञायककी ओर परिणति ढल रही होती है, वहाँ कौनसा विकल्प अन्तिम होता है (अर्थात् अन्तमें अमुक ही विकल्प होता है) ऐसा 'विकल्प'सम्बन्धी कोई नियम नहीं है। ज्ञायकधाराकी उग्रता–तीक्ष्णता हो वहाँ 'विकल्प कौनसा ?' उसका सम्बन्ध नहीं है।

भेदज्ञानकी उग्रता, उसकी लगन, उसीकी तीव्रता होती है; शब्द द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। अभ्यास करे, गहराईमें जाय, उसके तलमें जाकर पहिचाने, तलमें जाकर स्थिर हो, तो प्राप्त होता है—ज्ञायक प्रगट

गौतमस्वामी तुरन्त ही अंतरमें गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया। आत्माके स्वक्षेत्रमें रहकर लोकालोकको जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्षज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें आनन्दादि अनन्त गुणोंकी अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।

अभी इस पंचम कालमें भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर-भगवानका विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं। महाविदेहक्षेत्रमें कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है। आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागोंमें एक-एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं। वर्तमानमें विदेहक्षेत्रके पुष्कलावतीविजयमें श्री सीमंधरनाथ विचर रहे हैं और समवसरणमें विराजकर दिव्यध्वनिके स्रोत बहा रहे हैं। इस प्रकार अन्य विभागोंमें अन्य तीर्थंकरभगवन्त विचर रहे हैं।

यद्यपि वीरभगवान निर्वाण पधारे हैं तथापि इस पंचम कालमें इस भरतक्षेत्रमें वीरभगवानका शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है। वीरप्रभुके शासनमें अनेक समर्थ आचार्यभगवन्त हुए जिन्होंने

वीरभगवानकी वाणीके रहस्यको विविध प्रकारसे शास्त्रोंमें भर दिया है। श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्यभगवन्तोंने दिव्यध्वनिके गहन रहस्योंसे भरपूर परमागमोंकी रचना करके मुक्तिका मार्ग अद्भुत रीतिसे प्रकाशित किया है।

वर्तमानमें श्री कहानगुरुदेव शास्त्रोंके सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्तिका मार्ग स्पष्ट रीतिसे समझा रहे हैं। उन्होंने अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो ॥ ४३२ ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८९	१२	ज्ञेयोंको मानों वे	ज्ञेय मानों

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग विन वह नाव भी तारे नहीं।
इस कालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य है;
मम पुण्यराशि फली अहो! गुरुकहान नाविक आ मिले॥

✿

अहो! भक्त चिदात्माके, सीमंधर-वीर-कुन्दके!
बाह्यांतर विभवों तेरे, तारे नाव मुमुक्षुके॥

✿

शीतळ सुधाझरण चन्द्र! तुझे नमूं मैं;
करुणा अकारण समुद्र! तुझे नमूं मैं।
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तुझे नमूं मैं;
इस दासके जीवनशिल्पि! तुझे नमूं मैं॥

✿

अहो! उपकार जिनवरका, कुन्दका, ध्वनि दिव्यका।
जिनके, कुन्दके, ध्वनिके दाता श्री गुरुकहानका॥

'बहिनश्रीके वचनामृत'

(गुजराती द्वितीय आवृत्ति तथा हिन्दी प्रथम आवृत्ति)

के प्रकाशन हेतु प्राप्त हुई

रकम

रुपये	नाम	गाँव
३२०३	श्री दिगंबर जैन मुमुक्षुमंडल	सहारनपुर
२५०१	,, वीरचंद जेठाभाई मालदे (स्व० पद्मावहेन वीरचंदके स्मरणार्थ)	सोनगढ
२५००	स्व. पोपटलाल मोहनलाल वोराका परिवार	बम्बई
१२५२	श्री हसमुखराय कांतिलाल गांधी	भावनगर
११००	,, हंसाबहेन धीरजलाल तंबोळी	,,
१००१	स्व. अनिलकुमार जे. मोदी (हस्ते डॉ. हसुमतीबहेन ए. मोदी)	बम्बई
१००१	श्री रायचंद रतनशी गांधीका परिवार	बोटाद
१००१	,, जुगराज दुलीचंद जैन	बम्बई
१००१	,, भगवानजी कचराभाई शाह	मोम्बासा
७०१	,, केशवलाल व्रजलाल कोठारी	बम्बई
५०१	ब्र. शारदाबहेन जयसुखलाल संघाणी	राजकोट
५०१	स्व. नेमिदास खुशालदास टांकी	पोरबंदर
५०१	डॉ. सविताबहेन जे. शाह	बम्बई
५०१	स्व. किरीटकुमार प्रेमचंद भायाणी	लाठी
५०१	श्री चंचळबहेन प्रेमचंद भायाणी	,,
५०१	स्व. दिवाळीबहेन संघजी शाह (हस्ते समताबहेन तथा सुशीलाबहेन)	बोटाद
५०१	स्व. हेमकुंवरबहेन नरभेराम कमाणी	जमशेदपुर

गौतमस्वामी तुरन्त ही अंतरमें गहरे उतर गये और वीतरागदशा प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त किया। आत्माके स्वक्षेत्रमें रहकर लोकालोकको जाननेवाला आश्चर्यकारी, स्वपरप्रकाशक प्रत्यक्षज्ञान उन्हें प्रगट हुआ, आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें आनन्दादि अनन्त गुणोंकी अनन्त पूर्ण पर्यायें प्रकाशमान हो उठीं।

अभी इस पंचम कालमें भरतक्षेत्रमें तीर्थंकर-भगवानका विरह है, केवलज्ञानी भी नहीं हैं। महा-विदेहक्षेत्रमें कभी तीर्थंकरका विरह नहीं होता, सदैव धर्मकाल वर्तता है। आज भी वहाँ भिन्न-भिन्न विभागोंमें एक-एक तीर्थंकर मिलाकर बीस तीर्थंकर विद्यमान हैं। वर्तमानमें विदेहक्षेत्रके पुष्कलावतीविजयमें श्री सीमंधरनाथ विचर रहे हैं और समवसरणमें विराजकर दिव्यध्वनिके स्रोत बहा रहे हैं। इस प्रकार अन्य विभागोंमें अन्य तीर्थंकरभगवन्त विचर रहे हैं।

यद्यपि वीरभगवान निर्वाण पधारे हैं तथापि इस पंचम कालमें इस भरतक्षेत्रमें वीरभगवानका शासन प्रवर्त रहा है, उनका उपकार वर्त रहा है। वीरप्रभुके शासनमें अनेक समर्थ आचार्यभगवन्त हुए जिन्होंने

वीरभगवानकी वाणीके रहस्यको विविध प्रकारसे शास्त्रोंमें भर दिया है। श्री कुन्दकुन्दादि समर्थ आचार्यभगवन्तोंने दिव्यध्वनिके गहन रहस्योंसे भरपूर परमागमोंकी रचना करके मुक्तिका मार्ग अद्भुत रीतिसे प्रकाशित किया है।

वर्तमानमें श्री कहानगुरुदेव शास्त्रोंके सूक्ष्म रहस्य खोलकर मुक्तिका मार्ग स्पष्ट रीतिसे समझा रहे हैं। उन्होंने अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिश अंतरमें रहो॥ ४३२॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८६	१२	ज्ञेयोंको मानों वे	ज्ञेय मानों

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग विन वह नाव भी तारे नहीं।
इस कालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य है;
मम पुण्यराशि फली अहो! गुरुकहान नाविक आ मिले ॥

✿

अहो! भक्त चिदात्माके, सीमंधर-वीर-कुन्दके!
बाह्यांतर विभवों तेरे, तारे नाव मुमुक्षुके ॥

✿

शीतळ सुधाझरण चन्द्र! तुझे नमूं मैं;
करुणा अकारण समुद्र! तुझे नमूं मैं।
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तुझे नमूं मैं;
इस दासके जीवनशिल्पि! तुझे नमूं मैं ॥

✿

अहो! उपकार जिनवरका, कुन्दका, ध्वनि दिव्यका।
जिनके, कुन्दके, ध्वनिके दाता श्री गुरुकहानका ॥

'बहिनश्रीके वचनामृत'

(गुजराती द्वितीय आवृत्ति तथा हिन्दी प्रथम आवृत्ति)

के प्रकाशन हेतु प्राप्त हुई

रकम

रुपये	नाम	गाँव
३२०३	श्री दिगंबर जैन मुमुक्षुमंडल	सहारनपुर
२५०१	,, वीरचंद जेठाभाई मालदे (स्व० पद्मावहेन वीरचंदके स्मरणार्थ)	सोनगढ
२५००	स्व. पोपटलाल मोहनलाल वोराका परिवार	बम्बई
१२५२	श्री हसमुखराय कांतिलाल गांधी	भावनगर
११००	,, हंसावहेन धीरजलाल तंबोळी	,,
१००१	स्व. अनिलकुमार जे. मोदी (हस्ते डॉ. हसुमतीवहेन ए. मोदी)	बम्बई
१००१	श्री रायचंद रतनशी गांधीका परिवार	बोटाद
१००१	,, जुगराज दुलीचंद जैन	बम्बई
१००१	,, भगवानजी कचराभाई शाह	मोम्बासा
७०१	,, केशवलाल व्रजलाल कोठारी	बम्बई
५०१	ब्र. शारदावहेन जयसुखलाल संघाणी	राजकोट
५०१	स्व. नेमिदास खुशालदास टांकी	पोरबंदर
५०१	डॉ. सवितावहेन जे. शाह	बम्बई
५०१	स्व. किरीटकुमार प्रेमचंद भायाणी	लाठी
५०१	श्री चंचळवहेन प्रेमचंद भायाणी	,,
५०१	स्व. दिवाळीवहेन संघजी शाह (हस्ते समतावहेन तथा सुशीलावहेन)	बोटाद
५०१	स्व. हेमकुंवरवहेन नरभेराम कमाणी	जमशेदपुर

रुपये	नाम	गांव
५०१	श्री चंपाबहेन तखतराज	सायला (मारवाड)
५०१	स्व. कस्तूरबहेन नवलचंद लोदरिया (हस्ते श्री जगदीशचंद्र लोदरिया)	सोनगढ
५०१	श्री भगवानदास शोभालाल	सागर
५०१	स्व. नंदलाल रायचंद गांधी (हस्ते गं. स्व. पारवतीबहेन गांधी)	बोटाद
५०१	एक सद्‌गृहस्थ	कलकत्ता
५०१	श्री राजकुमारी, ध. प. देवकुमार जैन	सहारनपुर
५०१	,, ललिताबहेन व्रजलाल शाह	जलगाँव
५०१	,, हरिलाल जीवराज भायाणीका परिवार	भावनगर
५००	,, नयनाबहेन हीरालाल शाह	बम्बई
५००	,, हीरालाल बी. शाह	दहेगाम
५००	,, भरतकुमार शांतिलाल झवेरी	बम्बई
५००	,, संगीताबहेन भरतकुमार झवेरी	,,
४५०	,, भीखालाल शाह	दहेगाम
४५०	,, लीलीबहेन अंबालाल शाह	,,
४५०	,, निकुंजबहेन योगेन्द्रकुमार	अहमदाबाद
४०२	,, कांतिलाल हरिलाल शाह तथा कांताबहेन कांतिलाल शाह	बम्बई
४००	,, शारदाबहेन रतिलाल शाह	अहमदाबाद
४००	,, रश्मिकांत प्रदीपकुमार शाह	,,
४००	,, सरयूबहेन प्रवीणचंद्र शाह	,,
४००	,, रजनीकांत मणिलाल	,,
४००	,, मंगुबहेन अंबालाल शाह	,,
४००	,, ऊर्मिलाबहेन सुशीलकुमार	महेसाना
३५२	,, अनुपचंद छगनलाल उदाणी	बम्बई

रुपये	नाम	गाँव
३५१	श्री मिलन हसमुखराय गांधी	भावनगर
३५०	,, शर्मिष्ठावहेन चिमनलाल	अहमदावाद
३५०	,, विपिनचंद्र मणिलाल	,,
३०१	,, हीरालालजी जैन	भावनगर
३००	,, अशोककुमार काकुभाई	वम्वई
३००	,, दिनेशकुमार अंवालाल शाह	,,
३००	,, शान्तावहेन जीवणलाल शाह	दहेगाम
३००	,, दीपिकावहेन जीवणलाल शाह	वड़ोदा
३००	,, रश्मिवहेन केशवलाल	,,
३००	,, समरतवहेन भीखालाल शाह	सोनगढ़
३००	,, विपिनचंद्र जयन्तीलाल	वम्वई
३००	,, मीरा चिमनलाल शाह	अहमदावाद
२५१	,, चिमनलाल छोटालाल झोवाळिया	वम्वई
२५१	,, वसुवहेन चिमनलाल मणियार	,,
२५१	,, चिमनलाल विक्रमचंद संघवी	,,
२५१	,, चंदुलाल जगजीवनदास पारेख	,,
२५१	,, पोपटलाल मोहनलाल वोरा	,,
२५१	,, धीरजलाल नेमचंद श्रोफ	,,
२५१	,, कंचनवहेन अमुलख शेठ	जोगावरनगर
२५१	,, प्रभुलाल मोहनलाल घीया	राजकोट
२५१	,, दिगंवर जैन मुमुक्षुमण्डल	घाटकोपर
२५१	,, दिगंवर जैन मुमुक्षुमण्डल	बम्बई
२५१	,, दिगंवर जैन मुमुक्षुमण्डल	दादर
२५१	,, उपनगर दि० जैन मुमुक्षुमण्डल	मलाड़
२५१	,, दिनेशचंद्र अंवालाल शाह	दहेगाम
२५१	,, निरंजन चिमनलाल टेलीवाळा	सूरत

रुपये	नाम	गांव
२५१	,, मोहनलाल कानजी वीया	राजकोट
२५१	श्री दिगंबर जैन मुमुक्षुमण्डल	वढवाण
२५१	,, रळीयातवहेन रायचंद देवन (हस्ते श्री रामजी रूपशी)	नाईरोबी
२५१	श्री सुमेरमलजी ढाढरिया तथा परिवार	सरदारशहर
२५०	,, शान्तावहेन शान्तिलाल झवेरी	सोनगढ़
२५०	,, मनसुखलाल भूरालाल कोठारी	पोरबंदर
२५०	,, शान्तावहेन एच. शाह	बम्बई
२५०	,, चिनुभाई मणिलाल शाह	महेसाना
२५०	,, रतिलाल मावजी	बम्बई
२५०	,, ऊर्मिलावहेन हसमुखराय गांधी	,,
२५०	,, आरतीवहेन हसमुखराय गांधी	,,
२२५	,, दिगंबर जैन मुमुक्षुमण्डल	मद्रास
२१२	,, कसुम्बावहेन वालुभाई वोरा	कलकत्ता
२०२	,, हिंमतलाल छोटालाल झोवाळिया	बम्बई
२०२	,, वलुभाई चुनिलाल शाह	,,
२०२	,, अमुलख लालचंद शेठ	जोरावरनगर
२०२	,, विमळावहेन साराभाई शाह	बम्बई
२०१	,, व्रजलाल भाईलाल डेलीवाळा	सूरत
२०१	,, त्रिवेणीवहेन केशवलाल कोठारी	बम्बई
२०१	,, शांतावहेन गुलाबचंद टोळिया	,,
२०१	,, सी. जे. शाह	,,
२०१	,, फूलचंद अजितकुमार	गया
२०१	,, कसुम्बावहेन मूळजीभाई लाखाणी	राजकोट
२०१	,, मनसुखलाल छगनलाल उदाणी	माटुंगा

रुपये	नाम	गांव
२०१	स्व. मोतीबहेन चुनिलाल पारेख (हस्ते श्री छोटालाल रायचंद)	बोरसद
२०१	डॉ. प्रवीणचंद्र दिनकरराय दोशी	राजकोट
२०१	श्री प्रफुल्लचंद्र भवानभाई	लाठी
२०१	,, महालक्ष्मीबहेन	अहमदाबाद
२०१	,, अनंतराय व्रजलाल शाह	जलगांव
२०१	,, फूलचंद विमलचंद झांझरी	उज्जैन
२००	,, मंगळाबहेन नानालाल पारेख	पूना
२००	,, माणेकचंदजी जैन	भावनगर
२००	,, मणिलाल ईश्वरलाल	बम्बई
२००	,, मालिनी चिमनलाल शाह	अहमदाबाद
२००	,, चिमनलाल छोटालाल	बम्बई
२००	,, मूकेश रतिलाल शाह	अहमदाबाद
२००	,, चिनुभाई बुलाखीदास	,,
१५८	,, दि० जैन यात्रासंघ	जबलपुर
१५२	,, प्रभाबहेन अमृतलाल महेता	सोनगढ
१५२	,, शांतिलाल तथा कांतिलाल गि. शाह	,,
१५१	,, चंदुलाल मोहनलाल महेता	सुरेन्द्रनगर
१५१	,, हीराबहेन प्राणजीवनदास	पोरबंदर
१५१	,, रसिकलाल विक्रमचंद संघवी	कलकत्ता
१५०	,, मधुबहेन काकुभाई शाह	बम्बई
१५०	,, मूकेश मनुभाई शाह	दहेगाम
१२५	,, कस्तूरबहेन वेलजी शाह	मलाड
१२५	,, शान्तिलाल भाईलाल डेलीवाळा	सूरत
१२५	,, धीरजलाल भाईलाल डेलीवाळा	मलाड
१११	ब्र० भारतीबहेन मणिलाल शाह	पोरबंदर

रुपये	नाम	गांव
१०६	स्व. अमृतलाल नरशीदास शेठका परिवार	सोनगढ
१०२	श्री चंदुलाल विकमशी संघवी	राजकोट
१०१	श्री कान्तिलाल मोहनलाल कामदार	वीरमगाम
१०१	ब्र० पद्मावहेन, ब्र० हंसावहेन, ब्र० सुरेखावहेन	सोनगढ
१०१	ब्र० कंचनवहेन, ब्र० चंद्रावहेन, ब्र० पुष्पावहेन	,,
१०१	श्री कंचनवहेन वळवंतराय पारेख	वम्वई
१०१	,, महिला मुमुक्षुमंडल	छिंदवाडा
१०१	कु. नीलावहेन तथा अरुणावहेन	सोनगढ
१०१	श्री मोतीलाल कंवरचंद	खैरागढ
१०१	,, स्नेहलता चंदुलाल	राजकोट
१०१	,, कान्तावहेन हिमतलाल	सोनगढ
१०१	,, सवितावहेन माणेकलाल गांधी	वम्वई
१०१	,, सुरेन्द्रकुमार ईश्वरचंद	सनावद
१०१	,, लीलावंती धीरजलाल वोरडिया	वम्वई
१०१	डॉ. नवरंगलाल मगनलाल मोदी	राजकोट
१०१	श्री कमळावहेन दलीचंद गोसळिया	वम्वई
१०१	,, महेशचंद्र पोपटलाल शाह	,,
१०१	ब्र० सुशीलावहेन तथा श्री अशोककुमार	मलकापुर
१०१	श्री कान्तावहेन अजमेरा	नागपुर
१०१	,, हीरालाल अमृतलाल महेता	राजकोट
१०१	,, चंचळवहेन गोरधनदास	वम्वई
१०१	,, मोतीवहेन काळिदास	,,
१०१	,, रंभावहेन पोपटलाल वोरा	,,
१०१	,, व्रजलाल मगनलाल शाह	जलगांव
१०१	,, कपूरचंद त्रिभोवनदास वोरा	कलकत्ता
१०१	,, रमणीकलाल वीरचंद मोटाणी	,,
१०१	,, वावुभाई त्रिभोवनदास झवेरी	वम्वई

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री प्रभावहेन जटाशंकर	सोनगढ
१०१	,, भरतकुमार खीमचंद सेठ	राजकोट
१०१	,, रतनलाल अनुराग जैन	कलकत्ता
१०१	,, व्रजलाल तथा पं. श्री हिंमतलाल जे. शाह	सोनगढ
१०१	,, जुगलकिशोरजी जैन	कोटा
१०१	,, गुलाबचंदजी पोरवार	मलकापुर
१०१	,, पूनमचंद जसाजी मोदी	सायला (मारवाड)
१०१	,, रतिलाल हरगोविंददास मोदी	वम्बई
१०१	,, आनंदीलाल केशवलाल शाह	जलगांव
१०१	,, सोभागमलजी पाटनी	आगरा
१०१	स्व. विजयावहेन जूठाभाई	अहमदावाद
१०१	आठ ब्रह्मचारिणी वहिनें	सोनगढ
१०१	श्री जटाशंकर माणेकचंद 'कागदी'	जेतपुर
१०१	,, लालचंद रवजीभाई सेठ	,,
१०१	,, भूपेन्द्र प्लास्टिक्स	मद्रास
१०१	,, रतिलाल भूरालाल देसाई	अहमदावाद
१०१	,, शान्तिलाल नरोत्तमदास कामदार	,,
१०१	,, रमेशभाई	वम्बई
१०१	,, हेतल तथा दीपक कामदार	वडोदा
१०१	,, हंसावहेन सुरेन्द्रकुमार	—
१०१	,, चंद्रावती ध. प. श्री जिनेश्वरप्रसादजी	सहारनपुर
१०१	,, कौशल्यारानी ध. प. विशनदयाल जैन	,,
१०१	,, कांतावहेन छोटालाल	कलकत्ता
१०१	,, लीलावहेन वसंतराय	राजकोट
१०१	डॉ. पारुल तथा डॉ. अशोककुमार	वम्बई
१०१	श्री शारदावहेन भोगीलाल चत्रभुज	घाटकोपर
१०१	,, प्रेमचंद गुलाबचंद झोबालिया	वम्बई

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री नवलचंद जगजीवनदास शाह	सोनगढ
१०१	स्व. गिरधरलाल नागरदास शाह (हस्ते गं. स्व. मरघाबहेन शाह)	सुरेन्द्रनगर
१०१	श्री भारतीकुमारी मनहरलाल शेठ	बेंगलोर
१०१	,, खीमचंद छोटालाल झोवाळिया	सोनगढ
१०१	,, मांगीलाल शान्तिलाल जैन	महीदपुर
१०१	,, झबकबहेन रामजीभाई	सोनगढ
१०१	स्व. पानाचंद गोविंदजी (हस्ते श्री जगजीवनदास काळिदास)	अडताळा
१०१	श्री मुक्ताबहेन हरिलाल शेठ	कलकत्ता
१०१	,, पुष्पाबहेन लक्ष्मीचंद महेता	राजकोट
१०१	,, नवलचंदभाई तथा श्री गंगाबहेन पारेख	जामनगर
१०१	,, प्रेमचंद ओघडदास गोसळिया	चुडा
१०१	,, अमृतबहेन प्रेमजीभाई	मलाड
१०१	,, रमणीकलाल सुंदरजी गोसळिया	विलिमोरा
१०१	,, भूपतराय तथा कमळाबहेन रतिलाल	सोनगढ
१०१	,, फणीन्द्रचंद्रजी जैन	सहारनपुर
१०१	,, रजनीकान्त छोटालाल शाह	बम्बई
१०१	,, धनलक्ष्मी रमणीकलाल पंचमिया	,,
१०१	,, बाबुलाल मोहनलाल शाह	घाटकोपर
१०१	,, हंसिकाबहेन नरेन्द्रकुमार शाह (हस्ते सविताबहेन)	मोरबी
१०१	,, रसिकलाल वी. शाह	बम्बई
१०१	,, लाभुबहेन न्यालचंद (हस्ते भाईलाल)	,,
१०१	,, समजुबहेन गोविंदजी कोठारी	ध्रांगध्रा

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री जड़ाववहेन नानालाल जसाणी	बम्बई
१०१	„ रतिलाल शान्तिलाल 'होल्कर'	वडवाण
१०१	„ रश्मिकावहेन कुमारपाल	अंकलेश्वर
१०१	„ विजयावहेन रतिलाल लक्ष्मीचंद	भावनगर
१०१	„ जयावहेन छबीलदास वारिया	महुवा
१०१	स्व. रतनलालजी मोदी (हस्ते श्री चंद्रप्रभावहेन मोदी)	इन्दौर
१०१	एक मुमुक्षु बहेन (हस्ते ब्र० चंदुभाई)	सोनगढ़
१०१	स्व. किशोरकुमार (हस्ते सोनी उजमशी प्रेमचंद)	वडवाण
१०१	श्री अनंतराय व्रजलाल शाह	जलगांव
१०१	स्व. चंदुलाल भाईलाल डेलीवाळा (हस्ते नरेशचंद्र)	मलाड
१०१	वकील जयसुखलाल छगनलाल वाधर	जामनगर
१०१	श्री पुष्पावहेन दोलतराय महेता	जामनगर
१०१	„ दयाकुंवरवहेन आणंदलाल	जूनागढ़
१०१	„ पीयूष आनंदकुमार जैन	हैद्राबाद
१०१	ब्र० आशावहेन जादवजी टींबडिया	सोनगढ़
१०१	श्री कस्तूरवहेन सोमजी बोरा	नाईरोबी
१०१	डॉ. लाभुभाई दलीचंद संघवी	बम्बई
१०१	श्री भभूतमलजी भंडारी	बंगलोर
१०१	„ प्रभावतीवहेन रतिलाल मोदी	बम्बई
१०१	„ जगजीवनदास चतुरभाई शाह (हस्ते श्री रसिकलाल जगजीवनदास)	सुरेन्द्रनगर
१०१	„ तारामतीवहेन न्यालचंद ओबाडिया	झीन्जा

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री हरिलाल पोपटलाल शाह	—
१०१	,, प्रीतमलाल ताराचंद	गोंडल
१०१	,, मीनाक्षीवहेन शाह	जमशेदपुर
१०१	,, छोटालाल भीखालाल महेता	बम्बई
१०१	,, मलुकचंद छोटालाल झोबालिया	सोनगढ
१०१	,, मंछावहेन जयंतीलाल भायाणी	,,
१०१	,, बाबुभाई केशवलाल शाह	दहेगाम
१०१	,, मंजुलाकुमारी जैन	सायला (मारवाड)
१०१	स्व. शिवकुंवरवहेन जीवणलाल बोटादरा	घाटकोपर
१०१	श्री जीवणलाल करशनजी बोटादरा	,,
१०१	स्व. छबीलदास सुंदरजी बारिया	राजकोट
१०१	श्री हरगोविंददास उजमशी गोपाणी	बोटाद
१०१	,, चिमनलाल दीपचंद शाह	हैदराबाद
१०१	,, कपूरचंद सुखलाल कोठारी	नंदरबार
१०१	,, त्रिवेणीवहेन नरोत्तमदास	बोटाद
१०१	,, महासुखलाल भूपतलाल दोशी	घाटकोपर
१०१	,, सूरजवहेन धीरजलाल झोबालिया	सोनगढ
१०१	,, मंगळजी मूळजी खारा	संबलपुर
१०१	,, मोतीवहेन ठाकरशी	सोनगढ
१०१	ब्र० विमळावहेन रीखवदास जैन	,,
१०१	श्री रमेशचंद्र ब्रजलाल शाह	जलगांव
१०१	,, रत्नमालावहेन जैन	दिल्ही
१०१	,, चंचळवहेन चुनिलाल गांधी	वढवाण
१०१	,, फूलचंद हंसराज दोशी	मोरबी
१०१	,, अमृतलाल कालिदास मेघाणी	मलाड
१०१	,, गुणवंतराय कपूरचंद वोरा	कलकता
१०१	,, मुकुन्दराय जगजीवनदास हेमाणी	कलकत्ता

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री नवलचंद जगजीवनदास शाह	सोनगढ
१०१	स्व. गिरधरलाल नागरदास शाह (हस्ते गं. स्व. मरघाबहेन शाह)	सुरेन्द्रनगर
१०१	श्री भारतीकुमारी मनहरलाल शेठ	बेंगलोर
१०१	,, खीमचंद छोटालाल झोबाळिया	सोनगढ
१०१	,, मांगीलाल शान्तिलाल जैन	महीदपुर
१०१	,, झबकबहेन रामजीभाई	सोनगढ
१०१	स्व. पानाचंद गोविंदजी (हस्ते श्री जगजीवनदास काळिदास)	अडताळा
१०१	श्री मुक्ताबहेन हरिलाल शेठ	कलकत्ता
१०१	,, पुष्पाबहेन लक्ष्मीचंद महेता	राजकोट
१०१	,, नवलचंदभाई तथा श्री गंगाबहेन पारेख	जामनगर
१०१	,, प्रेमचंद ओघडदास गोसळिया	चुडा
१०१	,, अमृतबहेन प्रेमजीभाई	मलाड
१०१	,, रमणीकलाल सुंदरजी गोसळिया	बिलिमोरा
१०१	,, भूपतराय तथा कमळाबहेन रतिलाल	सोनगढ
१०१	,, फणीन्द्रचंद्रजी जैन	सहारनपुर
१०१	,, रजनीकान्त छोटालाल शाह	बम्बई
१०१	,, धनलक्ष्मी रमणीकलाल पंचमिया	,,
१०१	,, बाबुलाल मोहनलाल शाह	घाटकोपर
१०१	,, हंसिकाबहेन नरेन्द्रकुमार शाह (हस्ते सविताबहेन)	मोरबी
१०१	,, रसिकलाल बी. शाह	बम्बई
१०१	,, भानुबहेन न्यालचंद (हस्ते भाईलाल)	,,
१०१	,, समजुबहेन गोविंदजी कोठारी	ध्रांगध्रा

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री जगजीवनदास चतुरदास शाह	सुरेन्द्रनगर
१०१	,, मनसुखलाल मोनजीभाई जैन	मलाड
१०१	ब्र० हर्षदावहेन व्रजलाल शाह	सोनगढ
१०१	श्री प्राणलाल पोपटलाल पारेख	लाठी
१०१	,, नानालालभाई कोठारी	बम्बई
१०१	,, रमणीकलाल लालचंद अजमेरा	गढडा
१०१	,, मनसुखलाल छोटालाल झोबालिया	बम्बई
१०१	,, रवजीभाई गोविंदभाई	बोरीवली
१०१	,, वीरजीभाई भीमजीभाई	,,
१०१	,, बाबुभाई डाह्यालाल	,,
१०१	,, हरगोविंददास लालचंद गोपाणी	अहमदाबाद
१०१	डॉ. धरमचंदजी जैन	खंडवा
१०१	श्री किशोरचंद्र धीरजलाल झोबालिया	बम्बई
१०१	,, रमीला मगनलाल वोटादरा	,,
१०१	,, पूर्णिमावहेन रमेशचंद्र कामदार	,,
१०१	,, सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचंद तलाटी	,,
१०१	,, प्रभावती दामोदरदास मोदी (हस्ते श्री नवीन तथा योगेश)	अहमदाबाद
१०१	श्री गिरधरलाल ठाकरशी मोदी	मलाड
१०१	,, भूपेन्द्रकुमार केशवलाल कोठारी	बम्बई
१०१	,, गुलाबचंद देवचंद टोळिया	,,
१०१	,, जयंतीलाल चत्रभुज कामदार	जेतपुर
१०१	,, पन्नालालजी गंगवाल	कलकत्ता
१०१	,, नेमिचंदजी पाटनी	आगरा
१०१	,, हुकमचंदजी जैन	सुलतानपुर
१०१	,, खुशालचंद अचलाजी भंडारी	सायला (मारवाड)

रुपये	नाम	गाँव
१०१	श्री जडावबहेन नानालाल जसाणी	बम्बई
१०१	,, रतिलाल शान्तिलाल 'होल्कर'	वडवाण
१०१	,, रश्मिकाबहेन कुमारपाल	अंकलेश्वर
१०१	,, विजयाबहेन रतिलाल लक्ष्मीचंद	भावनगर
१०१	,, जयाबहेन छबीलदास वारिया	महुवा
१०१	स्व. रतनलालजी मोदी	इन्दौर
	(हस्ते श्री चंद्रप्रभाबहेन मोदी)	
१०१	एक मुमुक्षु बहेन (हस्ते ब्र० चंदुभाई)	सोनगढ
१०१	स्व. किशोरकुमार	वडवाण
	(हस्ते सोनी उजमशी प्रेमचंद)	
१०१	श्री अनंतराय व्रजलाल शाह	जलगांव
१०१	स्व. चंदुलाल भाईलाल डेलीवाळा	मलाड
	(हस्ते नरेशचंद्र)	
१०१	वकील जयसुखलाल छगनलाल बाधर	जामनगर
१०१	श्री पुष्पाबहेन दौलतराय महेता	जामनगर
१०१	,, दयाकुंवरबहेन आणंदलाल	जूनागढ
१०१	,, पीयूष आनंदकुमार जैन	हैद्राबाद
१०१	ब्र० आशाबहेन जादवजी टीबडिया	सोनगढ
१०१	श्री कस्तूरबहेन सोमजी वोरा	नाईरोबी
१०१	डॉ. लाभुभाई दलीचंद संघवी	बम्बई
१०१	श्री मभूतमलजी भंडारी	बगलोर
१०१	,, प्रभावतीबहेन रतिलाल मोदी	बम्बई
१०१	,, जगजीवनदास चतुरभाई शाह	सुरेन्द्रनगर
	(हस्ते श्री रसिकलाल जगजीवनदास)	
१०१	,, [illegible] [illegible] [illegible]	[illegible]

रुपये	नाम	गांव
१०१	श्री जगजीवनदास चतुरदास शाह	सुरेन्द्रनगर
१०१	,, मनसुखलाल मोनजीभाई जैन	मलाड
१०१	ब्र० हर्षदावहेन व्रजलाल शाह	सोनगढ
१०१	श्री प्राणलाल पोपटलाल पारेख	लाठी
१०१	,, नानालालभाई कोठारी	बम्बई
१०१	,, रमणीकलाल लालचंद अजमेरा	गढडा
१०१	,, मनसुखलाल छोटालाल झोवालिया	बम्बई
१०१	,, रवजीभाई गोविंदभाई	बोरीवली
१०१	,, वीरजीभाई भीमजीभाई	,,
१०१	,, बाबुभाई डाह्यालाल	,,
१०१	,, हरगोविंददास लालचंद गोपाणी	अहमदाबाद
१०१	डॉ. धरमचंदजी जैन	खंडवा
१०१	श्री किशोरचंद्र वीरजलाल झोबालिया	बम्बई
१०१	,, रमीला मगनलाल बोटादरा	,,
१०१	,, पूर्णिमाबहेन रमेशचंद्र कामदार	,,
१०१	,, सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचंद तलाटी	,,
१०१	,, प्रभावती दामोदरदास मोदी (हस्ते श्री नवीन तथा योगेश)	अहमदाबाद
१०१	श्री गिरधरलाल ठाकरशी मोदी	मलाड
१०१	,, भूपेन्द्रकुमार केशवलाल कोठारी	बम्बई
१०१	,, गुलाबचंद देवचंद टोलिया	,,
१०१	,, जयंतीलाल चत्रभुज कामदार	जेतपुर
१०१	,, पन्नालालजी गंगवाल	कलकत्ता
१०१	,, नेमिचंदजी पाटनी	आगरा
१०१	,, हुकमचंदजी जैन	सुलतानपुर
१०१	,, खुशालचंद अचलाजी भंडारी	सायला (मारवाड)

रुपये	नाम	गाँव
१०१	श्री जडावबहेन नानालाल जसाणी	बम्बई
१०१	,, रतिलाल शान्तिलाल 'होल्कर'	वडवाण
१०१	,, रश्मिकाबहेन कुमारपाल	अंकलेश्वर
१०१	,, विजयाबहेन रतिलाल लक्ष्मीचंद	भावनगर
१०१	,, जयाबहेन छबीलदास वारिया	महुवा
१०१	स्व. रतनलालजी मोदी	इन्दौर
	(हस्ते श्री चंद्रप्रभाबहेन मोदी)	
१०१	एक मुमुक्षु बहेन (हस्ते ब्र० चंदुभाई)	सोनगढ
१०१	स्व. किशोरकुमार	वढवाण
	(हस्ते सोनी उजमशी प्रेमचंद)	
१०१	श्री अनंतराय व्रजलाल शाह	जलगांव
१०१	स्व. चंदुलाल भाईलाल डेलीवाळा	मलाड
	(हस्ते नरेशचंद्र)	
१०१	वकील जयसुखलाल छगनलाल वाघर	जामनगर
१०१	श्री पुष्पाबहेन दोलतराय महेता	जामनगर
१०१	,, दयाकुंवरबहेन आणंदलाल	जूनागढ
१०१	,, पीयूष आनंदकुमार जैन	हैद्राबाद
१०१	ब्र० आशाबहेन जादवजी टीबडिया	सोनगढ
१०१	श्री कस्तूरबहेन सोमजी वोरा	नाईरोबी
१०१	डॉ. प्रभुभाई दलीचंद संघवी	बम्बई
१०१	श्री अमृतमलजी भंडारी	बंगलोर
१०१	,, प्रभावतीबहेन रतिलाल मोदी	बम्बई
१०१	,, जगजीवनदास चतुरभाई शाह	सुरेन्द्रनगर
	(हस्ते श्री रसिकलाल जगजीवनदास)	
[illegible]	,, [illegible]	[illegible]